सहजानंद शास्त्रमाला

परीक्षामुख सूत्र प्रवचन

भाग 24

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[चतुर्विंश भाग]

प्रवक्ता– पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द महाराज'

प्रमाणके फलके निरूपणमें अज्ञाननिवृत्तिरूप फलका विवरण— प्रमाणका स्वरूप, प्रमाणके भेद और प्रमाणके विषयको बताकर अब प्रमाणके फलके सम्बन्धमें जो दार्शनिकोंका विवाद हो रहा है उसके निराकरणके लिए सूत्र कहते हैं।

अज्ञाननिवृत्तिर्हानोपादानोपेक्षाश्च फलम् ॥५–१॥

प्रमाणादभिन्नं भिन्नं च ॥५–२॥

अज्ञाननिवृत्ति त्याग, ग्रहण, और उपेक्षा ये चार प्रमाणके फल हैं और ये प्रमाणके फल प्रमाणसे अभिन्न हैं और भिन्न भी हैं। अज्ञान निवृत्तिका अर्थ है अजानकारीसे हट जाना। त्यागका अर्थ है जानकारी होनेपर जिसमें अहित समझा गया उसका त्यागकर देना और जिसमें हित समझा गया उसको ग्रहण कर लेना, और, जो एक केवल जानन मात्रके लिए हुआ हित अहितका उनमें विशेष सम्बन्ध नही उसकी अपेक्षा करना, ये चार प्रमाणके फल हैं। अपनी यथार्थ जानकारी करने पर ज्ञाता पुरुषको क्या फल प्राप्त होता है, किस प्रयोजनके लिए वह जानकारी है उसका यह विवरण है। इन चार फलोंमें अज्ञाननिवृत्ति तो प्रमाणसे अभिन्न फल है, क्योंकि कुछ बाह्य विषयक इनमें प्रवृत्ति निवृत्ति नही है, केवल एक अज्ञान हट गया है। जब ज्ञानका उदय हुआ तो उस यथार्थ जानकारीके प्रकाशमें अज्ञान अंधेरा न रह सका। तो अज्ञान अंधेरा न रहना अथवा कहो अज्ञान निवृत्ति ये प्रमाणसे अभिन्न फल है।

प्रमाण फलमें अज्ञान निवृत्तिथी और शंका उसका समाधान– शंकाकार कहता है कि अज्ञान निवृत्ति तो प्रमाणभूत ज्ञान ही है, ज्ञान कहो या अज्ञान निवृत्ति कहो, ज्ञान हीका तो स्वरूप बताया गया है अज्ञान निवृत्ति कहकर अर्थात् जो अज्ञान भाव था उसकी निवृत्ति हो गई। तो यह तो प्रमाणभूत ज्ञान ही है। प्रमाणका ही स्वरूप हैं। प्रमाणकी बात प्रमाणका कार्य कैसे बन जायगा? कोई भी पदार्थ उस अपने ही पदार्थका कार्य है, यह कहना तो एक असंगत सीं बात है। फिर अज्ञान निवृत्ति प्रमाणका फल कैसे हो जायगा? समाधानमें कहते हैं कि यह शंका असंगत है, क्योंकि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अज्ञानके मायने है अज्ञप्ति । अर्थात् स्वरूप और पररूपका व्यामोह होना । अपने सम्बंध में और परके सम्बन्धमें व्यामुग्धता रहना, कुछ प्रकाश ही न हो सकना, बेहोशी होना, उस व्यामोहकी जो निवृत्ति है वही यथावत् स्वरूप और पररूपकी ज्ञप्ति है । सो प्रमाण के धर्म होनेसे प्रमाणके कार्य रूपसे माना जाय अज्ञान निवृत्ति, इसमें किसी प्रकारका विरोध नही होता । अज्ञान निवृत्ति प्रमाणका धर्म है । जब ज्ञान प्रकाश होता है तो अज्ञान निवृत्ति हो जाती है । तो ज्ञान प्रकाशका कार्य है अज्ञान निवृत्ति ।

दृष्टान्तपूर्वक अज्ञाननिवृत्तिमें प्रमाणकार्यत्वकी सिद्धि—जैसे कि प्रकाश होता है तो अंधकारकी निवृत्ति हो जाती है । अब उसमें कोई यह कहे कि अंधकारकी निवृत्ति प्रकाशके सद्भावरूप है । फिर प्रकाशका कार्य नहीं कह सकते अंधकारके हटनेको । इसे कौन मान लेगा ? सब व्यवहारी जनोंको परिचय है कि प्रकाश कारण है और अन्धकारकी निवृत्ति कार्य है । वह प्रकाशका धर्म है कि अज्ञानकी निवृत्ति हो जाय, इस कारण प्रकाशके कार्य रूपसे जैसे अन्धकारकी निवृत्ति विरोधको प्राप्त नहीं होती इसी प्रकार प्रमाणका धर्म होनेसे अज्ञाननिवृत्ति प्रमाणके कार्यरूपसे विरोधको प्राप्त नहीं होती । यदि प्रमाणके अपने विषयमें अपने स्वरूपमें पदार्थोंके स्वरूप में व्यामोह विच्छेद न हो । जैसे कि पहिलेसे प्रमाण और अर्थमें व्यामोह चल रहा था यदि उसका विच्छेद न हो तो वह तो निर्विकल्प दर्शन जैसी स्थिति है । और फिर सन्निकर्षसे कुछ विलक्षण स्थिति न रही तो उस प्रमाणमें प्रमाणता नहीं आ सकती प्रमाण और अज्ञाननिवृत्तिका भाव है ज्ञान होना और अज्ञानका हटना । यहाँ यह बतला रहे हैं कि ज्ञानका फल है अज्ञानका हटना और वह फल ज्ञानसे अभिन्न है । कुछ अलग नही बताया जा सकता कि ज्ञानसे जुदा यह है लो फल और यहाँ अलग पड़ा हुआ है । तो यद्यपि कुछ रूपमें ऐसा समझमें आता है कि ज्ञान होना और अज्ञानका हटना । बात तो एक ही कही जा रही है और एक ही बातमें फल कैसे माना जाय ? तखतका फल तखत है इसका अर्थ क्या हुआ ? इसी तरह ज्ञानका फल अज्ञान निवृत्ति है । अज्ञाननिवृत्ति भी ज्ञानरूप ही तो है उसका अर्थ क्या हुआ ? यद्यपि ऐसा किसीके भी लगता होगा, किन्तु कुछ विचार करनेपर जैसे अन्धकार निवृत्ति ये दोनों भिन्न भिन्न से समें हैं, इनका आशय जुदा–जुदा है । वहाँ कोई कहने लगे कि वाह प्रकाशका होना और अंधकारका मिटना, बात तो एक ही है, पर एक कहाँ है ? प्रकाश कारण है, अंधकारकी निवृत्ति कार्य है । और, भी यदि कुछ अभेदरूपसे देखो तो प्रकाश धर्मी है, अन्धकार निवृत्ति धर्म हो गया । तो ज्ञान धर्मी है, अज्ञाननिवृत्ति धर्म हो गया ।

धर्म धर्मीमें सर्वथा भेद व अभेदका प्रतिषेध—धर्म और धर्मीमें सर्वथा भेद अथवा अभेद नहीं बता सकते । सर्वथा अभेद कह दिया जाय तो शंका ठीक है कि प्रमाणका फल अज्ञाननिवृत्ति न होना चाहिए, पर सर्वथा अभेद नहीं है । सर्वथा भेद कहा जाय तो यह अज्ञाननिवृत्ति प्रमाणका फल है यह भी नहीं कहा जा सकता ।

Version 1

जैसे घट और पट । उनमें कहना कि पट घटका फल है तो इसका कोई अर्थ तो न रहा ? तो धर्म धर्मीमें सर्वथा भेद माननेपर भी बात नही बनती है । और सर्वथा अभेद माननेपर भी बात नही बनती । इस कारण कथंचित् भिन्न है कथंचित् अभिन्न धर्मी धर्म । और, वस्तुत: प्रमाणसे अभिन्न है अज्ञाननिवृत्ति । शकाकार कहता है कि अज्ञाननिवृत्ति ज्ञान ही तो है इस कारण इन दोनोंमें अभेद है क्योंकि अन्यथा अर्थात् अभेद न होता तो सामर्थ्य सिद्धता नहीं बन सकती । ज्ञान और अज्ञान निवृत्तिमें सामर्थ्य है । वह अभेदके बिना नही बन सकती है । इस कारण उन दोनोमें अभेद है । समाधानमें कहते हैं कि सर्वथा यह नहीं कह सकते क्योंकि भेदमें भी सामर्थ्य सिद्धत्वका होना अविरुद्ध है । आर भेद होनेपर भी सामर्थ्य सिद्धता देख लीजिये अथवा यों कहो कि भेद होनेपर ही सामर्थ्य सिद्धपना उपलब्ध होता है । जैसे कि निमंत्रणमें किसीको आह्वान किया तो निमंत्रयिता और निमंत्र्य पुरुष वे दोनों भिन्न भिन्न हैं, तब ही सामर्थ्य समझा जा रहा है ।

भेद होनेपर सामर्थ्यसिद्धत्वकी सिद्धि—जो पुरुष ऐसा कहते हैं कि अभेद होनेपर ही सामर्थ्य सिद्धत्वकी बात जानी जाती है और इस कारण इसमें अभेद है तो ऐसा कहने वाले लोग हेतुके अन्वय और व्यतिरेकमें भेद कैसे सिद्ध कर सकते हैं ? अन्वय कहलाता है साध्यके होनेपर साधनका होना और व्यतिरेक कहलाता है साध्यके न होनेपर साधनका न होना । तो जिस समय अन्वयकी बात कही कि साध्यके न होनेपर साधनका होना बस यही कहलाता है साध्यके न होनेपर साधनका न होना । तो इन दोनोंमें भी सामर्थ्य सिद्धपनेकी अविशेषता होनेसे अब भेद न रहा, अभेद हो गया । फिर अन्वय हेतु व्यतिरेक हेतु और उनके अलग अलग दृष्टान्त किस बातपर शोभा देंगे ? जब कोई बात ही न रही । अन्वयव्यतिरेकमें अभेद हो गया । सामान्य सिद्धपनेकी बात है तो फिर उन दो का वर्णन ही क्यों करते ? इससे सिद्ध है कि भेद होनेपर सामर्थ्य सिद्धपना बनता हैं । प्रमाण और अज्ञाननिवृत्तिका अभेद माननेपर कार्य कारण भावका विरोध भी नही होता । याने प्रमाण और अज्ञान-निवृत्ति ये वस्तुत: अभिन्न हैं । अर्थात् आधार इनका जुदा जुदा नही है, [लेकिन कोई एक ही मान ले तो उस अभेदका यही निराकरण किया है । वैसे वस्तुत: अभेद नहीं तो प्रमाण और अज्ञान निवृत्तिमें और इनको अभिन्न माननेपर प्रमाणका फल अज्ञान निवृत्ति है और वह अन्तरङ्ग फल है ऐसा जानना ।

प्रमाणसे अभिन्न होनेपर भी अज्ञाननिवृत्ति व प्रमाणमें कार्यकारण-भावका अविरोध—अज्ञाननिवृत्ति प्रमाणसे अभिन्न है ऐसा कहनेपर किसीको यह शंका न करना चाहिए कि इसमें कार्यकारणभावका विरोध आ जायगा याने जब अभेद हो गए तो उनमें कोई कार्य हो और कोई कारण हो यह भेद कैसे बनेगा ? सो यहाँ शंका यों न करना चाहिए कि अभेदमें भी कार्य कारण भावका विरोध नहीं है ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जैसे जीव और सुख, जीव और दुःख, क्या ये भिन्न भिन्न जगह हैं ? लेकिन जीव कारण है और सुख कार्य है। अभेद होनेपर भी कार्य कारण भावका इसमें विरोध नहीं आता। इसी प्रकार प्रमाण अर्थात् ज्ञान और अज्ञाननिवृत्ति इन दोनोंमें विरोध नही आता। अभेद हैं तिसपर भी ज्ञान तो कारण और अज्ञाननिवृत्ति कार्य हैं। ज्ञान तो विधिरूप है और अज्ञाननिवृत्ति प्रतिषेध रूप है। हुआ ज्ञान और मिटा अज्ञान। लोग भी व्यवहार नही करते ऐसा कि अज्ञानके मिटनेपर ज्ञान हुआ या अज्ञान मिटनेसे ज्ञान हुआ। व्यवहारमें भी यही कहते हैं कि ज्ञान होनेसे अज्ञान मिट जाता है। तो ज्ञान है प्रमाण और अज्ञाननिवृत्ति है प्रमाणका फल। और, यह फल सबके साथ रहता है। शेष जो तीन फल बताते गए हैं कि हितका ग्रहण करे, अहितका परिहार करे और शेषकी उपेक्षा करे। इनमें चाहे कोई कुछ भेद अन्तर आ जाय अथवा हो या न हो वह कार्य लेकिन प्रमाण होनेपर अज्ञाननिवृत्ति तो अवश्य ही होता है। अज्ञाननिवृत्ति न होनेपर त्याग उपादान उपेक्षा ये यथावत् नहीं हो सकते। अज्ञान निवृत्ति होनेपर कोई हान उपादान, व उपेक्षा न रहे या कुछ हीनाधिकता हो, चाहे यह सम्भव हो जाय, किन्तु अज्ञाननिवृत्ति प्रथम अनिवार्य है। अज्ञाननिवृत्तिफल ज्ञानसे अभेद है। और, ज्ञानके होनेपर अनिवार्य है कि अज्ञाननिवृत्ति हो ही जाती है।

परिच्छित्तिमें साधकतम और परिच्छित्तिमें अभेद होनेपर भी कार्य कारणभावका अविरोध—जो परिच्छित्ति क्रियामें साधकतम हो उसे प्रमाण कहते हैं। साधकतम स्वभाव वाला प्रमाण स्व: और परपदार्थकी ज्ञप्ति रूप अज्ञाननिवृत्तिको रचता है। वह रचना किसी अन्य सन्निकर्ष आदिकके द्वारा नहीं हो सकती है। साधकतम स्वभावपनेका अर्थ क्या है कि अपने और परके ग्रहणके व्यापारमें ही स्व और परके ग्रहणके अभिमुख होना इसका नाम है साधकतम और वह अपने ही कारण समूहसे उत्पन्न होता हुआ अपने और पर पदार्थके ग्रहणके व्यापार रूप उपयोगरूप होता हुआ स्व और अर्थके निश्चयरूपसे परिणमता है तब देखो कि अब यहां प्रमाण और अज्ञाननिवृत्ति अभेद रहे। लेकिन ऐसा अभेद रहनेपर भी प्रमाण और अज्ञान निवृत्तिमें कार्य कारणभावका विरोध नहीं है। प्रमाणका फल अज्ञान निवृत्ति है। सो प्रमाणसे अभिन्न होकर भी प्रमाण तो कारण है और अज्ञाननिवृत्ति कार्य है, यह भी बात सिद्ध हो जाती है।

प्रमाण और हानादिकमें व्यवधान होनेसे प्रमाणसे हानादिफलकी भिन्नताका अभाव—शंकाकार कहता है कि इस तरह फिर अज्ञाननिवृत्ति रूपताकी तरह हानि ग्रहण आदिकरूपसे प्रमाणपना सम्भव हो जायगा। तो वह भी प्रमाणसे अभिन्न फल बना। प्रमाणके फल ४ बताये गए हैं—अज्ञाननिवृत्ति, अहितपरिहार, हितग्रहण और उपेक्षा। इनमेंसे अज्ञान निवृत्तिको तो प्रमाणसे भिन्न बताया है और शेष तीन फलोंको प्रमाणसे भिन्न बताया है। तो विचारणीय बात यह आ जाती है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि जैसे प्रमाणकी अज्ञाननिवृत्तिरूपता प्रमाणसे अभिन्न है क्योंकि प्रमाण ही अज्ञान निवृत्तिका कर्ता होकर परिणमता है तो ऐसे ही प्रमाण अहित परिहारको हित ग्रहण और उपेक्षाको करता हुआ परिणमता है यह भी तो सम्भव हो जायगा। फिर शेष ३ फलोंको भी अभिन्न कह लीजिए ! समाधानमें कहते हैं कि यह बात भी आपकी असंगत है। अज्ञाननिवृत्तिरूप फलसे हानि उपादान आदिकमें व्यवधान सम्भव है। कैसे कि प्रमाणके द्वारा तो तुरन्त अज्ञाननिवृत्ति होती है और अज्ञाननिवृत्तिरूप फल पा लेनेके बाद फिर हानि उपादान और उपेक्षा ये तीन फल होते हैं। तब देखिये ! प्रमाणमें और हानि, उपादान उपेक्षा इन तीन फलोंमें व्यवधान आ गया। प्रमाणसे हुई अज्ञान निवृत्ति। अज्ञाननिवृत्तिके बाद हुए हैं ये तीन फल। इस कारण ये तीन फल प्रमाणसे भिन्न हैं, इसमें कोई विरोध नही आता। इसीलिये कहा गया है कि हानि उपादान और उपेक्षा ये तीन फल प्रमाणसे भिन्न हैं। लेकिन यहांपर भी कथंचित् ही भिन्नता निरखना चाहिए, सर्वथा भिन्नता नही। यदि हानि उपादान उपेक्षारूप तीन फलोंको प्रमाणसे सर्वथा भिन्न मान लिया जाय तो ये प्रमाणके फल हैं, इतना भी व्यवहार कर सकनेकी गुञ्जाइश नही रहेगी। जैसे घट पट भिन्न हैं तो उनमें तो नही कह सकते कि ये प्रमाणके फल हैं। इसी तरह हानि उपादान उपेक्षा ये तीन तो प्रमाणसे सर्वथा भिन्न हो जाते हैं तब वहां इतना भी व्यवहार न बन सकेगा कि ये प्रमाणके फल हैं। अब इस ही अर्थको स्पष्ट करते हुए अगला सूत्र कहते हैं जिस में कि लौकिकजन और शास्त्रज्ञ लोग सभीको जैसा ज्ञान स्पष्ट है वह जाहिर होगा। सूत्र यह है—

यः प्रमिमीते स एव निवृत्ताज्ञानो जहात्यादत्त उपेक्षते ॥ ५-३ ॥

प्रमाणके चारों फलोंकी प्रमाणसे अभिन्नताका दर्शन—जो ज्ञाता पुरुष जानता है अर्थात् स्व और अर्थके ग्रहणरूप परिणामसे परिणमता है वह ही तो निवृत्ताज्ञान होता हुआ अर्थात् अज्ञानको हटाता हुआ अपने विषयमें व्यामोह रहित होकर हितके असाधकको याने अहितको छोड़ता है और अभिप्रेता प्रयोजनके साधकको ग्रहण करता है जिसमें न हितका प्रयोजन है न अहितका साधक है, ऐसे ज्ञेयकी उपेक्षा करता है यह बात प्रतीत होती है। इससे सिद्ध है कि प्रमाण और फलमें पर्याप्त भेद है और फिर भी कथंचित् अभेद है। जिस ज्ञाताने जाना उसने क्या किया कि अपनेको और पर अर्थको जानले। इस परिणति रूपसे परिणमना। अब ज्ञाताके इस ढंगके परिणमनमें हुआ क्या ? उसका अज्ञान हट गया। अज्ञान हटनेपर क्या हो गया कि अब यह प्रमाता पुरुष जाननहार पुरुष अपने विषयमें अर्थात् स्व और अर्थमें विषयमें व्यामोह रहित हो गया। जो पहिले जानकारी थी, बेहोशी थी। न समझी थी वह सब हट गयी। अब उस समय उसने जैसे जाना कि यह इष्ट प्रयोजनका असाधक है उसे तो छोड़ देता है और जो इष्ट प्रयोजनका साधक है उसको ग्रहण कर लेता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और जो ऐसा है कि न तो इष्ट प्रयोजनका साधक है न असाधक, उसे उपेक्षा कर देता है। तो अब यहाँ देख लीजिए कि सर्व फलोंका सम्बन्ध प्रमातासे है इसलिए सर्वथा भिन्न नहीं कह सकते। लेकिन रीतिमें, पद्धतिमें, स्वरूपमें, व्यपदेशमें अन्तर है। इस कारण भिन्न कह दिया जाय तो यह प्रमाणका फल है इतना भी सम्बन्ध न बन सकेगा। इस कारण यह बात स्पष्ट निर्णीत हो गयी कि प्रमाणके फल चार हैं जिनमें अज्ञाननिवृत्तिका साक्षात् सम्बन्ध है और अज्ञाननिवृत्ति अभिन्नफल है। अब अज्ञान निवृत्ति होनेके बाद हानि उपादेय और उपेक्षा चलती है सो ये भिन्न फल हैं।

प्रमाता प्रमाण और फलोंमें भेदका अभाव माननेपर उनकी व्यवस्था के लोपकी शंका और उसका समाधान— शंकाकार कहता है कि प्रमाता, प्रमाण और फल इन तीनमें भेदका अभाव होनेसे प्रतीति प्रसिद्ध जो इन तीनकी व्यवस्था है उसका लोप हो जायगा। यहां तो प्रमाता प्रमाण और फल इनको अभिन्न बताया है। प्रमाताके मायने प्रमाण करने वाला, ज्ञान, ज्ञान अथवा आत्मा जानो। प्रमाणका अर्थ है जिसके द्वारा जाना जा रहा है। जाननेमें साधकतम है प्रमाण और फल सो ये चार बताये ही जा रहे हैं और यहां इन फलोंसे भी एकको तो अधिक रूप से भिन्न कह दियो और शेष तीनको भी किसी दृष्टिसे अभिन्न कह दिया तो इसका अर्थ यह हुआ कि ये तीनोंके तीनों अभिन्न हुये। फिर प्रतीति सिद्ध जो कुछ इसकी व्यवस्था है उसका लोप हो जायगा। समाधानमें कहते हैं कि यह कहना असंगत है। यहां जो भेद अभेद कहा जा रहा है वह कथंचित् कहा जा रहा है। कथंचित् भेद होनेसे उनमें भेद है। देखो उसमें कि पदार्थ परिच्छित्ति काममें जो साधकतम रूपसे व्याप्रियमाण स्वरूप है वह तो है प्रमाण और वह प्रमाण है निर्व्यापार। व्यापार मायने क्रिया। वह है परिच्छित्तिरूप। आत्माका स्वतन्त्र है व्यापार। सो उसका सद्-भाव आत्मामें है। साधकतम स्वरूप जो प्रमाण है वह निर्व्यापार है। अब वहाँ देखिये कि स्वतन्त्रतासे जो व्याप्रियमान हो वह तो है प्रमाता और जो साधकतम रूपसे व्याप्रियमान है वह है प्रमाण। तो अब देखिये— प्रमाता और प्रमाणमें कथं-चित् भेद हो गया ना। यह तो है भेदकी बात। अब अभेदको निरखो तो पहिली पर्याय विशिष्ट बोधकी जो कि कथंचित् अवस्थिति है उसकी परिच्छित्ति विशेषरूपसे ही तो उसका फल हुआ, उस फलरूपसे जो उत्पत्ति हुई है सो उस ही बोधकी हुई है। इस कारण परिच्छित्तिमें और बोधमें अभेद हो गया।

साधनभेदसे प्रमाण और परिच्छित्तिमें भेदकी सिद्धि—साधन भेदसे भी प्रमाण और परिच्छित्तिमें भेद देखा जाता है। देखो ! प्रमाण तो है करण साधन क्योंकि साधकतम स्वभाव वाला है जिसके द्वारा जाना जाता है, प्रमाण किया जाता है उसे कहते हैं प्रमाण। तो प्रमाणमें तो करणसाधनपन है और प्रमातामें कर्तृ-साधनपना है, वह स्वतंत्र है। जो जानता है सो प्रमाता है। व्याकरणका नियम है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि कर्ता स्वतन्त्र होता है। तो करणसाधन हुआ प्रमाण, कर्तृसाधन हुआ प्रमाता और भावसाधन हु क्रिया। अपने अर्थका निर्णय करने वाला स्वभाव है क्रिया, वह है भावसाधन अर्थात् 'प्रमिति इति प्रमाणं'। प्रमिति क्रिया है, जानन इस भावरूप क्रिया है। तो यों प्रमाता प्रमाण और प्रमेयमें भेद सिद्ध होता है। इस तरह कथंचित् भेद मान लेनेसे कार्य कारणका भी विरोध खतम हो जाता है। कार्यकारणपना न तो सर्वथा भिन्नमें होता है और न अभिन्नमें। सो ही स्थिति यहां प्रमाता, प्रमाण और प्रमेयकी है इस कारण कार्यकारणपना होनेमें किसी भी तरहका विरोध नही है।

प्रमाण और प्रमाणफलमें कथंचित् भेद माननेमें सिद्धसाध्यता— अब शंकाकार कहता है कि प्रमाण अपने स्वरूपसे भिन्न क्रियाका करने वाला होगा, क्योंकि कारक होनेसे। जैसे बसूला आदिक। बढ़ईका बसूला जैसे कारण कारक है। बसूलेके द्वारा ही तो काठ छेदा जाता है, तो देखो ! वह बसूला अपनेसे भिन्न क्रिया का करने वाला है। बसूला काम करता है काठके छेदनेका। तो छेदन हुआ काठका और बसूला है अपने स्वरूपमें तो देखो ! बसूलेकी क्रिया बसूलेसे भिन्न रही ना, तो जितनी भी क्रियायें होती हैं उन क्रियाओंका जो करण है उन करणोंसे क्रिया भिन्न हुआ करती है। समाधानमें कहते हैं कि यहाँ जो यह कहा जा रहा है कि प्रमाण अपने स्वरूपसे भिन्न क्रियाका करने वाला है सो यहाँ भिन्नसे प्रयोजन कथंचित् भिन्नसे है या सर्वथा भिन्नसे है ? यदि कहो कि प्रमाण अपने स्वरूपसे कथंचित् भिन्न क्रियाका करने वाला है तो कथंचित् भिन्न मानकर सिद्धसाध्यता आ जायगी, क्योंकि अज्ञान-निवृत्ति तो प्रमाणका धर्म है और हानि, उपादान, उपेक्षा ये प्रमाणके कार्य हैं। अत-एव प्रमाणसे कथंचित् भिन्न मान ही लिये गये। प्रमाण धर्मी है, अज्ञाननिवृत्ति धर्म है, प्रमाण करण है, हानि, उपादान, उपेक्षा फल है। इस प्रकार कथंचित् प्रमाणसे भेद तो इन फलोंको मान ही लिया गया, इसलिए कथंचित् भेद माननेपर तो कोई दोष नही है, बिल्कुल इष्ट ही बात है।

प्रमाण और प्रमाणफलमें सर्वथा भेद माननेपर दृष्टान्तमें साध्यविकलताकी आपत्ति—यदि सर्वदा भेद मानोगे तो दृष्टान्त साध्यविकल हो जायगा अर्थात् अनुमान ऐसा है शंकाकारका कि प्रमाण अपने स्वरूपसे भिन्न क्रियाका करने वाला है कारण होनेसे बसूला आदिककी तरह। तो यह सर्वथा भिन्न क्रियाका करने वाला है ऐसा यदि पक्ष ग्रहण करना है तो दृष्टान्तमें ही यह बात नही पायी जा रही बसूला अपनेसे सर्वथा भिन्न क्रियाका करने वाला नहीं है। क्योंकि बसूलेके द्वारा जो काठके छेदन रूप क्रिया हुई, छिदता है ना काठ और किया हुआ भी दिखता है कि देखो बसूलेके द्वारा काठका छेदन भी हुआ, तो उस छेदनका अर्थ भी समझो क्या है ? छेदका अर्थ क्या है उसमें प्रवेश हो जाना इसीका नाम छेदन क्रिया है। जैसे बसूलेने काठको छेद दिया तो इसका अर्थ यह है कि बसूला उस काठके भीतर प्रवेश

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रवेश कर गया। तो वह जो प्रवेश कर गया। तो वह जो प्रवेश है बसूलेका आत्मगत ही धर्म है। कहीं अन्यका धर्म नहीं है। काष्ठमें बसूलेका प्रवेश होना बसूलेमें ही पाया जाने वाला धर्म है। तो देखो—बसूला भी अपनेसे सर्वथा भिन्न क्रियाका करने वाला न हुआ। शंकाकार कहता है कि जो छेदन क्रिया है वह तो काठके अन्दर मौजूद है और बसूला देवदत्तमें मौजूद है। मानलो कोई देवदत्त नामका कारीगर बसूलेसे काठको छेद रहा है तो उस समय दिखता है कि छेदन क्रिया तो काठमें मौजूद होती है। और बसूला देवदत्तके हाथमें मौजूद है। तब इन दोनोंमें भेद हो गया ना ? फिर तो यह कहना युक्त नहीं कि साध्य विकल दृष्टान्त हो गया। क्योंकि यह बसूला भी कारक होनेसे अपने स्वरूपसे भिन्न छेदन क्रियाका करने वाला हुआ ? छेदन क्रिया तो है काठमें और बसूला है देवदत्तके हाथमें तो यह भेद हो गया। इसलिए बसूला और छेदन क्रियामें भेद ही मानना चाहिए और फिर जब दृष्टान्त पुष्ट हो गया तो प्रमाणमें भी यही बात मानना चाहिए कि प्रमाण अपने स्वरूपसे भिन्न क्रिया करने वाला है। समाधानमें कहते हैं कि यह बात भली नहीं है। क्योंकि इस प्रकार तो सर्वथा भेदकी सिद्धि भी न हो सकेगी। सत्त्वादिक धर्म जो सर्वसाधारण धर्म हैं उन धर्मोंकी दृष्टिसे तो सर्व पदार्थोंमें अभेदकी प्रतीति हो रही है सर्वथा भेद ही है यह पक्ष निभ नहीं सकता।

करण और फलमें सर्वथा भेदके नियमकी असिद्धि—प्रमाण और प्रमाणफलमें सर्वथा भेद माननेपर दूसरी बात यह है कि करणसे क्रिया सर्वथा भिन्न ही हो, यह नियम नहीं बन सकता अर्थात् क्रियाका जो साधकतम है, जिसके द्वारा क्रिया की गई है वह करण, वह साधकतम पदार्थ और क्रिया ये सर्वथा भिन्न ही होते हों यह नियम नहीं बन सकता याने करणसे क्रिया भिन्न ही होती है यह बात अयुक्त है क्योंकि देखिये ! दीपक अपने आपके स्वरूपके द्वारा अपने आपको प्रकाशित करता है तो दीपककी क्रिया भी प्रकाशन क्रिया है और वह प्रकाशन क्रिया दीपकसे अभिन्न है। तो अभेदरूपसे भी करणसे क्रियाका बोध देखा जा रहा है, इस कारण यह नियम नहीं बना सकते कि करणसे क्रिया सर्वथा भिन्न ही होती है। प्रदीपकी जो प्रदीपना है, प्रदीपन क्रिया है प्रदीपपना वह प्रदीपसे भिन्न नहीं है। यदि दीपकका दीपकपना दीपकसे भिन्न हो जाय तो दीपक अब दीपक ही न रहा वह अप्रदीप बन गया। तो देखो ! दीपकी क्रिया, दीपका कार्य जब दीपसे अभिन्न रहा, तो सर्वथा भिन्न होती है करणसे क्रिया, यह नियम न बना। शंकाकार कहता है कि प्रदीपपना प्रदीपसे अभिन्न है, तो उत्तर इसका स्पष्ट है कि प्रदीपका प्रदीपत्व यदि प्रदीपसे भिन्न है तो यह प्रदीप दीपक कहाँ रहा ? वह तो अप्रदीप हो गया। जैसे—पट। प्रदीपत्व पट है भिन्न है। तो पटमें प्रदीपता तो न रही। शंकाकार कहता है कि दीपकमें दीपकत्वका समवाय है। दीपकत्व है दीपसे भिन्न पदार्थ और उसका समवाय हो गया प्रदीपमें, तो भिन्न होनेपर भी प्रदीपत्वके समवायसे प्रदीपमें प्रदीप सिद्धि हो जायगी। उत्तरमें कहते

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है कि वह बात अयुक्त है। अब जो प्रदीप नहीं हैं ऐसे घटपट आदिक पदार्थोंमें फिर तो प्रदीपत्वका समवाय हो बैठेगा। जब प्रदीपका प्रदीपत्व प्रदीपसे भिन्न है और उस भिन्न प्रदीपत्वका प्रदीपमें समवाय करके प्रदीपत्वका स्वरूप बना रहे हो तो जैसे प्रदीपत्वरहित प्रदीपमें प्रदीपत्वका समवाय करते हो इसी प्रकार प्रदीपत्वरहित घट-पट आदिकके प्रदीपत्वका समवाय बन बैठेगा। शंकाकार कहता है कि प्रत्यापत्तिविशेष होनेसे प्रदीपत्वका प्रदीपमें समवाय ही होता है, घट पट आदिक अन्य पदार्थोंमें नहीं। तो उत्तरमें कहा जा रहा कि वह प्रत्यासत्ति विशेष जिस हेतुसे प्रदीपमें ही प्रदीपत्वका समवाय नियंत्रित करना चाहते हो सो वह प्रत्यासत्ति विशेष और है ही क्या ? सिवाय कथंचित् तादात्म्यके। याने प्रदीपत्वका प्रदीपमें ही समवाय बता रहे। शंकाकार घट आदिकमें प्रदीपत्वका समवाय नहीं कहते तो ऐसा क्यों होता है ? इसके उत्तरमें शंकाकारने कहा कि प्रदीपत्वका प्रदीपसे ही निकटपना है, इस कारण प्रदीपत्वका प्रदीपमें ही समवाय होता है, तो निकटपनेका अर्थ क्या है ? प्रदीपत्वका निकट पना प्रदीपसे ही है। इसका अर्थ है कि प्रदीपमें प्रदीपत्व तादात्मयरूपसे है। कथंचित् तादात्म्यको छोड़कर अन्य प्रत्यासत्ति विशेष है ही क्या ? तो इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रदीपत्व प्रदीपसे कथंचित् अभिन्न है कथंचित् तादात्म्य है।

प्रदीपका प्रकाशनक्रियासे कथंचित् अभेद—प्रदीप व प्रदीपत्वमें अभेद की तरह यह भी सिद्ध हो जाता कि प्रदीपकी प्रकाशन क्रिया भी प्रदीपसे अभिन्न है और प्रकाशन क्रिया भी प्रदीपात्मक है। जैसे— प्रदीप और प्रदीपत्वमें भेद नहीं। इसी प्रकार प्रकाशन क्रिया भी प्रदीपस्वरूप ही है। यदि प्रकाशन क्रियासे प्रदीपत्वका भेद मान लिया जाय तो प्रकाशन क्रिया तो प्रदीपत्वसे जुदी हो गई। अब प्रदीप अप्रकाशक द्रव्य बन गया, क्योंकि उसका काम जो प्रकाशन क्रिया होती है उसको तो मान लिया प्रदीपत्वसे अत्यन्त भिन्न, तब फिर प्रदीपमें प्रकाशन क्रिया न रही तो प्रदीप अप्रकाशित द्रव्य बन बैठा। शंकाकार कहता है कि हम प्रकाशन क्रियामें प्रदीपत्वका समवाय कर देंगे, फिर तो यह दोष न रहेगा कि प्रदीप अप्रकाशक बन जाय या अन्य अप्रकाशक पदार्थोंमें प्रदीपत्वका सम्बन्ध बन जाय ! तो क्रियाको प्रदीपत्वका समवाय मान लेनेसे यह दोष न आयगा। उत्तरमें कहते हैं कि यह बात भी समीचीन नहीं है, क्योंकि समवाय माननेपर वे ही समस्त दोष आयेंगे जिनका कि अभी वर्णन किया गया है। इस कारण यही निष्कर्ष मानना चाहिए कि प्रमाण और फलमें आत्यन्तिक भेद नहीं है। जैसे प्रदीपमें और प्रदीपत्वमें, प्रदीप और प्रदीपकी प्रकाशन क्रियामें आत्यन्तिक भेद नहीं माना जा सकता, इसी प्रकार प्रमाण और प्रमाणका फल हुआ अज्ञाननिवृत्ति, इनमें भी आत्यन्तिक भेद नहीं माना जा सकता। इस प्रकार यहाँ तक यह बात सिद्ध की गई कि प्रमाणसे प्रमाणका फल अत्यन्त भिन्न नहीं है। प्रमाणको प्रमाणफलसे अत्यन्त भिन्न भी नहीं माना जा सकता, क्योंकि व्यपदेश धर्म क्रियादिकी अपेक्षा भी भेद न माना जाय तो प्रमाण और प्रमाणफलकी अव्यवस्था हो जायगी।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अब प्रमाण क्या रहा ? प्रमाणका फल क्या रहा ? जब प्रमाण और प्रमाणका फल एक हो गए तो उनमें यह व्यवस्था कैसे बन गई कि यह तो है प्रमाण और यह है प्रमाणका फल।

प्रमाण और फलमें अभेद होनेपर भी भेद व्यवस्था करनेका क्षणिकवादमें प्रयास और सम्यक सिद्धान्त— क्षणिकवादी कहता है कि हम प्रमाण और प्रमाणफलके व्यपदेशकी व्यवस्था यों बना लेंगे कि जिस पदार्थको जानते हैं उस पदार्थका आकार पूरा ज्ञानमें आता है और उस पदार्थके धर्म भी ज्ञानमें आते हैं। पदार्थके साथ जो सदृशता है वही है निर्विकल्प ज्ञानका प्रमाण स्वरूप। और जो अधिगम है, समझना है वह है फल। उत्तरमें कहते हैं कि यदि पदार्थके साथ जो सदृशता है उसे मान लिया जाय प्रमाण और अधिगतिको समझसे मान लिया जाय फल तो यह बात सर्वथा तादात्म्यमें तो नही स्वीकार की जा सकती है। जब प्रमाण और प्रमाणका फल सर्वथा अभिन्न हो गए तो उस अभिन्नतामें इतना बड़ा भेद कैसे डाला जा सकता है कि प्रमाण तो हैं अर्थके साथ सदृश इस कारण वह भिन्न हो गया और अधिगति फल भिन्न हो गया। कहाँ पदार्थ और कहाँ अधिगति। इनके भेदकी यह सर्वथा तादात्म्यमें व्यवस्था नही करायी जा सकती है, इससे प्रमाणसे प्रमाणफल सर्वथा अभिन्न हो यह भी सही नही और भिन्न हो यह भी सही नही। कथंचित भिन्न है और कथंचित अभिन्न है। यह फल प्रमाणसे कथंचित् भिन्न और कथंचित् अभिन्न होनेपर भी तुलनात्मक दृष्टिसे अज्ञान निवृत्तिरूप फल तो प्रमाणसे अभिन्न है और हानि, उपादान, उपेक्षा रूप तीन फल प्रमाणसे भिन्न हैं।

व्यावृत्तिके कथनसे ज्ञानकी व भेदकी अव्यवस्था— क्षणिकवादी शंकाकार कह रहा है कि प्रमाण और फलका सर्वथा अभेद मान लेनेपर भी इन दोनोंमें व्यावृत्तिके भेदसे प्रमाण और फलकी व्यवस्था घटित हो जाती है। जैसे कि अप्रमाण व्यावृत्तिसे होने वाला ज्ञान प्रमाण कहलाता है। अफल व्यावृत्तिके द्वारा फलका बोध होता है अर्थात् वस्तु अन्यापोहात्मक है और अन्यापोहके द्वारा ही वाच्य है। तो जहाँ अप्रमाण व्यावृत्ति है वह तो है प्रमाण जहाँ अफल व्यावृत्ति है वह है फल। तो व्यावृत्तिकी पद्धतिसे देखो अब प्रमाणमें और फलमें अन्तर पड गया। समाधानमें कहते हैं कि यह भी बिना विचारे कहना है। परमार्थसे क्षणिकवादी शंकाकारके ही इष्टकी सिद्धिका विरोध है। शंकाकार चाह रहा था कि प्रमाण और फलमें भेद सिद्ध करदें लेकिन अन्य व्यावृत्तिसे जब भेद सिद्ध करने चले तो व्यावृत्तिसे भेद न रह सकेगा। क्योंकि स्वभाव भेदके बिना अन्य व्यावृत्तिसे भी भेद नहीं बन पाता। और, इस विषयमें जब सारूप्य अन्यापोह आदिकका विचार चल रहा था तब वर्णन भी बहुत प्रकारसे कर दिया गया है तो प्रमाण और फलको सर्वथा अभेद माननेपर किसी प्रकार प्रमाणफलकी व्यवस्था नहीं बनती। प्रमाण और फलका सर्वथा भेद

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

माननेपर यह फल प्रमाणका है इतना भी सम्बन्ध नहीं माना जा सकता और फिर यह बतलावो कि जैसे कह रहे हैं ये क्षणिकवादी कि अप्रमाणकी व्यावृत्तिसे प्रमाणकी व्यावृत्तिसे प्रमाणकी व्यवस्था बनती है और अफलकी व्यावृत्तिसे फलकी व्यवस्था बनती है तो बजाय ऐसा कहनेके यदि यह कह दिया जाय कि प्रमाणकी व्यावृत्तिसे अप्रमाणकी व्यवस्था बनती है और फलोंकी व्यावृत्तिसे अफलकी व्यवस्था बनती है तो यह भी क्यों न सही हो जाय ? निष्कर्ष यह है कि व्यावृत्तिके द्वारा वस्तुकी व्यवस्था नहीं घटित की जा सकती है इस कारण परमार्थिक प्रमाण और फल प्रतीति सिद्ध मानना ही चाहिए और उन्हें कथंचित भिन्न समझना चाहिए। क्योंकि कथंचित भिन्न माने बिना प्रमाण और फलकी व्यवस्था नहीं बन सकती है।

प्रमाणफल विवरक परिच्छेद—इस परिच्छेदमें प्रमाणके फलका वर्णन किया गया है। प्रमाणके फल हैं चार— अज्ञाननिवृत्ति हानि, उपादान, और उपेक्षा, ये चारोंके ही चारों कथंचित् प्रमाणसे भिन्न है, कथंचित् प्रमाणसे अभिन्न हैं। फिर भी तुलनात्मक दृष्टिसे अज्ञाननिवृत्तिमें प्रमाणसे अभिन्नताका विचार विशेष चलता है और हानि उपादान उपेक्षामें प्रमाणसे भिन्नताका विचार विशेष चलता है उसका कारण यह है कि अज्ञाननिवृत्ति तो है प्रमाणसे तुरन्त साक्षात् होने वाला फल और हानि उपादान उपेक्षा ये होते हैं अज्ञाननिवृत्तिरूप फल प्राप्त होनेके पश्चात्। इस कारण जो साक्षात् है उसे अभिन्न कहा है और जो व्यवधान सहित है उसे भिन्न कहा है। अब इस समय प्रमाण संख्या विषय और फल ये चार बातें अब तक इस ग्रन्थमें निरूपितकी हैं, उनसे विपरीत आभासके सम्बन्धमें निरूपण चलेगा। पहिले बताया था कि प्रमाण क्या है तो अब बतावेंगे कि प्रमाणाभास क्या है ? पहिले कहा था कि संख्या क्या है। अब बतावेंगे कि संख्याभास क्या है। पहिले विषय बताया गया था। अब बतायेंगे विषयाभास। अभी फल बताया गया, अब बतायेंगे फलाभास। इस निरूपणके लिए निर्देशक सूत्र कहते हैं।

(षष्ठ परिच्छेद)

ततोऽन्यत्तदाभासम् ॥ ६-१ ॥

आभासोंका निर्देश— जो पहिले प्रमाण, संख्या, विषय, फल बताये गए हैं उनसे भिन्न जो कुछ है वह तदाभास है। अर्थात् प्रमाणाभास संख्याभास, विषयाभास और फलाभास। जिस प्रकारसे प्रमाणका वर्णन किया गया है स्व और अपूर्व अर्थका व्यवसायात्मक ज्ञान प्रमाण होता है अब इस लक्षणसे हटा हुआ विपरीत या अन्य प्रकारके लक्षण किए जायेंगे वे सब प्रमाणभास कहलाते हैं। संख्या जो कुछ प्रमाण की बतायी गई है उससे विपरीत हीनाधिकरूपसे जो भी संख्या बतायी जायगी वह है संख्याभास। विषय कहो अथवा प्रमेय कहो, उसका स्वरूप अभी बताया ही गया था

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि सामान्य विशेषात्मक पदार्थ प्रमाणका विषय होता है और वही प्रमेय है। तो उससे विपरीत जो स्वरूप है वह प्रमेयाभास है, इसी प्रकार फल जो अभी बताये गये हैं अज्ञान निवृत्ति, हान, उपादान, उपेक्षा इनसे विपरीत अन्य जो कुछ भी बताया जायगा वह है फलाभास। इन सब आभासोंमेंसे सर्वप्रथम प्रमाणाभासका वर्णन किया जायगा। प्रमाणका स्वरूप बताया है स्वार्थ व्यवसायात्मक। उससे भिन्न जो स्वरूप होगा वह प्रमाणाभास है। ऐसे प्रमाणाभास कौन–कौन होते हैं इसके विवरणमें सूत्र कहते हैं।

अस्वसंविदितगृहीतार्थदर्शनसंशयादयः प्रमाणाभासाः ॥ ६–२ ॥

प्रमाणाभासोंका निर्देश— अस्वसम्विदित ज्ञान गृहीतार्थ ज्ञान दर्शन संशय विपर्यय अनध्यवसाय, ये सब प्रमाणाभास कहलाते हैं, प्रमाण होता है स्वसम्विदित अर्थात् जो अपने आपके स्वरूपको भी जान लेता है और पर अर्थको भी जानता है उसे कहते हैं स्वार्थव्यवसायात्मक। तो उसमें स्वसम्वेदकत्व है। उसे न मानकर जो लोग अस्वसम्वेदी ज्ञान मानते हैं कि ज्ञान अपने आपका स्वसम्वेदन नहीं करता, किन्तु ज्ञानके स्वरूपका स्वसम्वेदन करनेके लिए अन्य ज्ञानकी जरूरत होती है। तो ऐसा ज्ञान अस्वसम्विदित है और वह प्रमाणाभास है। दूसरा प्रमाणाभास कहा जा रहा है गृहीतार्थ ज्ञान। पहिले प्रमाणसे जिस अर्थका ग्रहण किया जाता। अब उस ही रूपमें उस ही पद्धतिसे उतने अंशोंमें बराबर जानना सो प्रमाणाभास है तीसरा प्रमाणाभास बतलाते हैं दर्शनका। क्षणिकवादमें निर्विकल्प दर्शनको प्रमाण माना है। लेकिन निर्विकल्प दर्शनसे कुछ निर्णय ही नहीं है। जो अनिश्चयात्मक ज्ञान है वह प्रमाण कैसे हो सकता है ? अतः यह भी प्रमाणाभास है चौथा प्रमाणाभास है संशय। यह सोना है या चाँदी, यों दो या अनेक कोटियोंमें अपनी प्रतिपत्ति स्खलित करनेको संशयज्ञान कहते हैं। संशयज्ञान अनिश्चयात्मक है अतः प्रमाणाभास है। विपर्ययज्ञानमें वस्तु स्वरूपके विपरीत ज्ञान किया जाता है, जो विपरीत अर्थका प्रतिभासक है उसको प्रमाणाभास कहते हैं। एक अनध्यवसायज्ञान भी प्रमाणाभास है जिसमें किसी भी प्रकारका निश्चय नहीं है। वह सब प्रमाणाभास है। अब ये सब बोध क्यों प्रमाणाभास हैं उसका हेतु बताते हैं।

प्रवृत्तिविषयोपदर्शकत्वाभावात् ॥ ६–३ ॥

प्रमाणाभासादिकोंका आभासत्व बतानेका कारण—उक्त सूत्रमें कहा गया कि प्रमाणाभास पदार्थोंके विषयका उपदर्शन नहीं कर पाते इस कारण प्रमाणाभास हैं। प्रमाणका प्रयोजन है, कर्तव्य है कार्य है कि हितकी प्राप्ति कराना और अहितका परिहार करना, सो हितकी प्राप्तिके लिये हितरूप विषय तो जाननेमें आना चाहिए तभी तो हितार्थ प्रवृत्ति हो सकेगी और इन ज्ञानोंमें प्रमाणाभासोंमें प्रवृत्तिके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बिषयका उपदर्शन नही होता। जैसे कि अस्वसम्विदित ज्ञानको प्रमाणाभास कहा गया है। यह ज्ञान जब स्वको ही नही ग्रहण कर पाता तब पदार्थोंकी प्रतिपत्तिका योग ही न हो सकेगा। जहाँ स्वको नही जाना, परका भी ज्ञान नही हो पाता तो प्रवृत्ति कहाँ करे ? तो प्रवृत्तिके विषयका उपदर्शकत्व नही है अस्वसम्विदित ज्ञानमें, इस कारण यह प्रमाणाभास है। गृहीतार्थज्ञान, जिसको जान लिया भली तरह अब और हीन प्रवृत्ति उस ज्ञानसे हो जाती है, लेकिन उसके बाद बराबर उतने ही अंशोंमें उसी पद्धतिमें उस ही ज्ञानको दुहराना, तो यह गृहीतार्थ ज्ञान है। उसमें प्रवृत्तिके विषयके उपदर्शनका लक्ष्य ही नही है, अतएव वह प्रमाणाभास है। निर्विकल्प दर्शनसे प्रवृत्तिके विषयका उपदर्शन है ही नही, क्योंकि क्षणिकवादमें निर्विकल्प दर्शनसे उत्पन्न होने वाले विकल्पको ही पदार्थका उपदर्शकत्व माना है। तो प्रकृतिके विषयमें उपदर्शन न होनेसे, समझ न पानेसे निर्विकल्प दर्शन भी प्रमाणाभास है। संशयज्ञानमें और विपर्यय अनध्यवसाय ज्ञानमें जो स्पष्ट मिथ्याज्ञान माने गये है उनमें प्रवृत्तिके विषयका उपदर्शन है ही कहाँ ? तो ये सब बोध प्रमाणाभास इस कारण कहलाते कि इनसे हित प्राप्ति अहित परिहारका कार्य नहीं बन पाता। हिताहित विषयका जब उपदर्शन ही न हो सका तो प्रमाणता कहांसे आयगी ? अब इन्हीं प्रमाणाभासोंका स्पष्टीकरण करनेके लिए दृष्टान्त देते हैं --

पुरुषान्तरपूर्वार्थगच्छत्तृणस्पर्शस्थाणुपुरुषादिज्ञानवत् ॥६-४॥

प्रमाणाभासोंके दृष्टान्त —अस्वसम्विदितज्ञान प्रमाणाभास है, क्योंकि यह प्रवृत्तिके विषयका उपदर्शन नही करता है। जैसे देवदत्तका ज्ञान यज्ञदत्तके द्वारा गृहीत तो नही है। यज्ञदत्तका ज्ञान यज्ञदत्तमें है। तो जब यज्ञदत्तका ज्ञान देवदत्तके ज्ञानका सम्वेदन ही नही कर पा रहा तो देवदत्तज्ञान विषयक चीजमें प्रवृत्ति तो नही हो सकती यज्ञदत्तकी, क्योंकि वह अस्वसंवेदी ज्ञान है। गृहीतार्थ ग्राहक ज्ञान भी अपने प्रवृत्तिके विषयका उपदर्शन नही करता। जैसे कि पूर्व अर्थका ज्ञान जिसको पहिले बराबर जाना समझा उस पदार्थका ज्ञान पदार्थ प्रवृत्तिके विषयका उपदर्शन नही करता यों गृहीतार्थज्ञान भी प्रमाणाभास है। निर्विकल्प दर्शन इस तरहका अनिश्चयात्मक है जैसे कि चलते हुए पुरुषके पैरमें तृणस्पर्श हो जाय तो उसका कुछ भी निश्चय नही रहता है इसी प्रकार वह भी प्रमाणाभास है। संशय ज्ञान भी प्रमाणाभास है। जैसे कि स्थाणु है अथवा पुरुष है इस ज्ञानमें निश्चयात्मकता नहीं है ऐसे ही संशयज्ञानमें भी निश्चयात्मकता नहीं है। तो ये सब ज्ञान प्रवृत्तिके विषयका उपदर्शन न करनेके कारण प्रमाणाभास कहलाते हैं।

चक्षूरसयोर्द्रव्ये संयुक्तसमवायवच्च ॥ ६–५ ॥

सन्निकर्षकी प्रमाणाभासताका दृष्टान्त—सन्निकर्ष भी अप्रमाण है। जैसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि चक्षु और रसका द्रव्यसे संयुक्त समवाय है और जब उस द्रव्यसे सन्निकर्षको जाना तो रसका ज्ञान तो नहीं हो पाता है। तो जैसे चक्षु और रसका संयुक्त समवाय होनेपर सन्निकर्ष प्रमाण नहीं है उसी प्रकार चक्षु और रूपका भी संयुक्त समवाय होनेपर भी प्रमाणाभास है। ऊपर कहे गए जितने भी प्रतिभास कहे गए हैं उनका सही-सही प्रमाण संख्या आदिकका वर्णन पहिले कर दिया गया है और उसको निहारकर उसकी तुलना करके इन आभासोंको जाननेसे उनका अन्तर और स्वरूप भी स्पष्ट जाना जाता है। अब उन सब प्रमाणाभासोंका क्रमसे वर्णन करते हैं।

अवैशद्ये प्रत्यक्षं तदाभासं बौद्धस्या कस्माद्धूम दर्शनाद् वह्निविज्ञानवत् ॥ ६-३ ॥

प्रत्यक्षाभासका वर्णन —इसमें प्रत्यक्षाभासका लक्षण किया गया है। प्रत्यक्ष उसे कहते हैं जो विशद हो, स्पष्ट हो, और जो विशद न हो, जिसमें अविशदता हो और फिर भी प्रत्यक्ष कहा जाय तो वह प्रत्यक्षाभास कहलाता है। जैसे क्षणिक-वादियोंका अकस्मात् धूम दर्शन होनेसे जो अग्निका ज्ञान माना है आभासरूप जैसे कि धूम और भापका विवेक निश्चय न होनेसे व्याप्तिके भी ग्रहणका अभाव होनेसे आकस्मिक धूम दर्शनसे उत्पन्न हुआ जो अग्निका ज्ञान है उसे आभास ज्ञान बताया गया है, क्योंकि निश्चय नहीं हो रहा है। तो इसी तरहसे क्षणिकवादियोंके यहाँ परिकल्पित जो निर्विकल्प प्रत्यक्ष है वह भी प्रत्यक्षाभास है, क्योंकि निर्विकल्प प्रत्यक्षमें पदार्थका निर्णय नहीं हो पाता। प्रत्यक्ष तो उसीको कहते हैं जहाँ विशद परिज्ञान हो, लेकिन निर्विकल्प ज्ञानमें विशद परिज्ञान तो होता नहीं और उसे मान रहे हैं प्रत्यक्ष तो वह प्रत्यक्षाभास कहलायेगा। प्रमाणके मूलमें दो भेद किए गए थे प्रत्यक्ष और परोक्ष। तो प्रत्यक्षकी तुलनामें प्रत्यक्षाभासका तो वर्णन कर दिया गया है, अब परोक्षकी तुलनामें परोक्षाभासका वर्णन करते है।

वैशद्येऽपि परोक्षं तदाभासं मीमांसकस्य करणज्ञानवत् ॥ ६-७ ॥

परोक्षाभासका वर्णन—परोक्ष कहते हैं अविशद ज्ञानको। जिसके ज्ञानमें स्पष्टता न हो उस ज्ञानको परोक्ष कहते हैं, लेकिन जिस ज्ञानमें निर्मलता हो और फिर भी उसे परोक्ष कहा जाय तो वह परोक्षाभास है। जैसे मीमांसक सिद्धान्तमें इन्द्रियजन्य ज्ञानको सर्वथा परोक्ष माना है। उस करणज्ञानमें स्पष्टता है एक देश, तिसपर भी उसे सर्वथा परोक्ष मान लेना सो परोक्षाभास है। इन्द्रियज्ञानमें अव्यवधान से प्रतिभास होनेका नाम विशदता है ना, वह बराबर है। विशदता उसे कहते हैं कि अव्यवधानसे प्रतिभास हो जाना। जैसे-आँखों देखा और तुरन्त अर्थ प्रतिभास हुआ कि एकके व्यापार करनेके बाद फिर कुछ पदार्थोंके प्रतिभासित होनेमें बीचमें कोई विघ्न न आये तो उसे कहेंगे विशदज्ञान और, जब बीचमें कोई व्यवधान होता है उसे कहते हैं परोक्षज्ञान जैसे-स्मरण किया किसीने तो उस स्मरण ज्ञानके होनेमें बीचमें व्यवधान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पड़ता है, प्रत्यक्षका, अनुभवका, क्योंकि स्मृतिज्ञान होता है प्रत्यक्षज्ञान पूर्वक । जैसे किसी चीजका कोई भी प्रत्यक्ष न किया गया हो, अनुभव न किया गया हो तो स्मरण नहीं होता अथवा किसी भी प्रमाणको न जाना गया हो तो उसका स्मरण तो नही होता । यों स्मरण ज्ञान होनेके लिए अन्य ज्ञानके सहयोगकी आवश्यकता होती है इस कारण किया जा रहा है, उस ज्ञानके होनेके लिए अन्य ज्ञानके सहयोगकी आवश्यकता नही है । अन्य ज्ञानका व्यवधान नही है इस कारण इन्द्रियजन्यज्ञान प्रत्यक्ष है, विशद है फिर भी उसे सर्वथा परोक्ष कहना सो यह परोक्षाभास है । देखो ! इन्द्रियजन्य ज्ञान में अपने आपका भी प्रतिभास होता है और पदार्थका भी प्रतिभास होता है और वह भी अन्य ज्ञानोंकी अपेक्षा लिए बिना । तो वैशद्यका जो लक्षण है वह इन्द्रियज्ञानमें प्रसिद्ध होता है फिर भी उस इन्द्रियज्ञानको सर्वथा परोक्ष मानना सो परोक्षाभास है । अब परोक्षके भेदोंमेंसे सभी भेदोंका आभास क्रमसे बता रहे हैं ।

अतस्मिंस्तदिति ज्ञानं स्मरणाभासं जिनदत्ते स देवदत्तो यथेति ॥६–८॥

स्मरणाभासका वर्णन—स्मरणज्ञान कहते हैं अनुभव किए गए पदार्थमें वह है इस प्रकारका आकार किए हुए जो परिच्छित्ति होती है उसे कहते हैं स्मरण । लेकिन अनुभूत पदार्थ तो हुआ ना और चीज वह हुई ना । और उसमें वह है ऐसा करे तो वह स्मरणाभास है । जैसे—था तो कोई पुरुष जिनदत्त और उसके बारेमें ऐसा स्मरण किया जा रहा है कि वह देवदत्त है । तो जो पदार्थ नहीं है उसका स्मरण किया जा रहा है कि वह देवदत्त है । तो जो पदार्थ नही है उसका स्मरण किया जाय मायने विपरीत अर्थका स्मरण किया जाय तो उसे कहते हैं स्मरणाभास । अब प्रत्यभिज्ञानाभासका वर्णन करते हैं ।

सदृशे तदेवेदं तस्मिन्नेव तेन सदृशं यमलकवदित्यादि प्रत्यभिज्ञानाभासम् ॥६–९॥

एकत्वप्रत्यभिज्ञानाभासका वर्णन—एकत्व प्रत्यभिज्ञानका लक्षण किया गया है कि जिसको पहिले देखा था, अनुभव किया था । उसके सामने आनेपर, प्रत्यक्षभूत होनेपर उसकी एकताका ज्ञान करना, यह वही पुरुष है जिसे हमने पहिले देखा था । इस प्रकारके एकत्वका जो ज्ञान है वह कहलाता है एकत्व प्रत्यभिज्ञान । लेकिन वह तो हो नही और उसके बारेमें यह वही है ऐसा एकत्वका ज्ञान किया जाय तो उसे कहेंगे एकत्व प्रत्यभिज्ञानाभास, स्मरणाभास तो जो नहीं है उसका स्मरण करना कहा गया था लेकिन एकत्व प्रत्यभिज्ञानाभासका वर्णन स्मरणाभास है और साथ ही प्रत्यक्ष करके उनमें एकत्व जोड़ा जा रहा है । जैसे—सामने तो हो जिनदत्त और उसके बारेमें ऐसा ज्ञान बनायें कि यह वही देवदत्त है जो पहिले मिला था तो यह एकत्व प्रत्यभिज्ञानाभास हो गया । अथवा जो हो उसके ही समान और उसमें यह वही है इस प्रकारका ज्ञान किया जाय तो यह है एकत्व प्रत्यभिज्ञानाभास ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

साद्दश्य प्रत्यभिज्ञानाभासका वर्णन—साद्दश्य प्रत्याभिज्ञानाभास किसे कहते हैं, इस लक्षणके जाननेके लिये पहिले साद्दश्य प्रत्यभिज्ञानका लक्षण सोचिये ! सामने कोई सद्दश पदार्थ है और उसी समय उसके सद्दश पदार्थका स्मरण हो जाय और तब कहें कि यह उसके समान है यह कहलाता है साद्दश्य प्रत्यभिज्ञान । जैसे बन में जाते हुए पुरुषको रोझ दीखा उस रोझको देखकर ऐसा ज्ञान करे कि यह रोझ गायके समान है तो यह हुआ साद्दश्य प्रत्यभिज्ञान । लेकिन जंगलमें गाय ही तो दिख गई और उसे देखकर कहा कि यह गायके समान है तो यह है साद्दश्य प्रत्यभिज्ञानाभासा थी तो वही एक चीज और उसमें सद्दशताका प्रत्यभिज्ञान किया जा रहा है। तो सद्दश पदार्थमें यह वही है ऐसा एकत्व जाने वह तो है एकत्व प्रत्यभिज्ञानाभास । और उस ही पदार्थमें यह उसके समान है ऐसा बोध करें तो वह है साद्दश्य प्रत्यभिज्ञानाभास । जैसे कि दो जुगलिया लड़के थे । मान लो उन दोनोंकी एक सी सकल थी । मानो एकका नाम था जिनदत्त और एकका नाम था देवदत्त । अब देवदत्तको ही देखकर कोई ऐसा सोचे कि यह देवदत्तके समान है तो यह साद्दश्य प्रत्यभिज्ञानाभास हुआ । और, जिनदत्तको देखकर यह देवदत्त ही है ऐसा ज्ञान बने तो एकत्व प्रत्य भिज्ञानाभास है । निष्कर्ष यह है कि समान पदार्थोंमें एकत्वका बोध करे वह तो है एकत्वप्रत्यभिज्ञानाभास और उस ही एक पदार्थमें सद्दशताका ज्ञान करे तो वह कहलाता है साद्दश्यप्रत्यभिज्ञानाभास । इसी प्रकार वैलक्षण्य प्रतियोगी आदिक प्रत्यभिज्ञानोंके विरुद्ध वैलक्षण्यप्रत्यभिज्ञानाभास प्रतियोगि प्रत्यभिज्ञानाभासका भी स्वरूप समझना चाहिए । अब तर्काभासका स्वरूप कहते हैं ।

असम्बन्धे तज्ज्ञानम् तर्काभासम् यावांस्तत्पुत्रः स श्याम इति यथा ॥६–१०॥

तर्काभासका वर्णन—तर्क कहते हैं व्याप्तिके ज्ञानको । और व्याप्ति उसे कहते हैं जहां साध्य साधनका सम्बन्ध घटित किया जाय । जहां साध्य नहीं होता वहां साधन भी नहीं होता । इस प्रकार साध्य साधनके सम्बन्धको घटित करे, वह तो है व्याप्ति और व्याप्तिके ज्ञानको तर्क कहते हैं । तो यहां उस तर्कणाभासमें यह बात सिद्ध होती है कि साध्यसाधनका सम्बन्ध तो है नहीं, व्याप्ति तो बन नहीं रही और उसमें ज्ञान किया जा रहा है तो वह तर्काभास है । तो जहां व्याप्ति तो बनती नहीं और फिर भी व्याप्तिका ज्ञान करना । जैसे कि किसीने अनुमान किया कि देवदत्तका छोटा पुत्र भी श्याम है क्योंकि देवदत्तके सारे पुत्र श्याम हैं । तो अब यहां व्याप्ति न बन जायगी कि जितने भी देवदत्तके पुत्र हों वे सब श्याम ही हों । व्याप्ति घटित न होनेपर भी व्याप्ति मान लेना वह तर्काभास कहलाता है । अब अनुमानाभासका प्रकरण बतलाते हैं ।

इदमनुमानाभासम् ॥६–११॥

अनुमानाभासका वर्णन—यहां अनुमानाभासके सूत्रमें अनुमानाभासका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लक्षण तो कहा नहीं, किन्तु यह अनुमानाभास है, इतना कहा गया तो इससे यह मानना चाहिए कि यह अधिकारसूत्र है। चूँकि अनुमानका वर्णन बहुत है, अनुमानके अंग बहुत हैं साधन, साध्य, प्रतिज्ञा, दृष्टान्त आदिक अनेक बातें हैं। तो जितने ही अनुमानके अंग हैं उतने ही अनुमानाभासके अंग हैं। तो अनुमानकी तरह अनुमानाभासका प्रकरण भी अधिक है। तो उन समस्त आभासोंका ज्ञान कर लेनेपर अनुमानाभासोंका ज्ञान होता है, तो उन समस्त अनुमानोंके अंगका, साधनोंका आभास दिखाया जायगा, तब उन अंगोंके आभासका वर्णन करनेके सिवाय और को ऐसी युक्ति नहीं है कि अनुमानाभासका स्वरूप बनादे, इस कारण यह अनुमानाभास है अर्थात् अब जो कुछ आगे कहेंगे वह सब अनुमानाभास है। अनुमान कहते हैं साधनसे साध्यके विज्ञान होने को और ऐसा तो ज्ञान हो नहीं, उससे विपरीत हो, जिसका कि वर्णन अभी करेंगे तो वह सब अनुमानाभास है। अनुमानके सम्बन्धमें पक्ष हेतु दृष्टान्तादिक बताकर अनुमान का प्रयोग किया गया है। तो उतनी ही बातें आभासमें होंगी। जैसे—पक्षाभास, हेत्वाभास, दृष्टान्ताभास आदि। तो उन सब आभासोंमेंसे सबका क्रमसे वर्णन करना है तो पहिले ही पक्षाभासका वर्णन किया जायगा। चूँकि अनुमानाभास पहिलेसे कुछ बताया जाना शक्य नहीं है। जिन अंगोंसे दोष आता है उनकी सदोषता बतानेपर अनुमानाभास होगा ऐसे अनुमानाभासके उन अंगोंमें सबसे पहिले पक्षाभासका वर्णन किया जा रहा है कि जो वास्तविक तो पक्ष न हो और पक्षकी तरह मान लिया जाय उसे पक्षाभास कहते हैं। सभी आभासोंका यही लक्षण है। जिसका आभास हो उस का तो लक्षण पाया न जाय और अन्यमें उसीको माना जाय तो वह आभास कहलाने लगता है। तब अनुमानके आभासत्वके वर्णनमें अब पक्षाभासका वर्णन करते हैं।

तत्रानिष्टादिः पक्षाभासः ॥ ६-१२ ॥

पक्षाभासका निर्देश—अनिष्ट, सिद्ध और बाधित ये तीन तरहके पक्षाभास होते हैं। चूँकि पक्ष अथवा इस प्रसंगमें कहो प्रतिज्ञा इष्ट होना चाहिए, अबाधित होना चाहिए और असिद्धको सिद्ध करनेके लिए होना चाहिए, लेकिन यदि प्रतिज्ञा ही अनिष्ट है जो स्वयंके मंतव्यका निराकरण करदे तो वह पक्षाभास है, प्रतिज्ञा सिद्ध ही है और फिर उसे सिद्ध करनेके लिए अनुमान आदिक बनानेका व्यर्थका श्रम किया जाय तो वह पक्षाभास है। इस प्रकार जो प्रतिज्ञा अन्य प्रमाणसे बाधित हो और बाधित होनेपर भी उस प्रतिज्ञाको सिद्ध करनेका अनुमान बनाया जाय तो वह पक्षाभास है। उन तीन प्रकारके पक्षाभासोंमेंसे अब अनिष्ट नामक पक्षाभासको कहते हैं।

अनिष्टो मीमांसकस्यानित्यः शब्द इति ॥ ६-१३ ॥

अनिष्टनामक पक्षाभास—कभी-कभी कोई वादी-प्रतिवादी आदिकके देखनेपर अथवा बड़े समुदाय सभासदोंसे लगा हुआ क्षेत्र हो उसको या उस सभाका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निर्णायक बड़ा प्रभावशाली हो उसको देखकर कभी बुद्धि आकुलित हो जाय तो वह अपना ही मंतव्य कुछ भूल सा जाता है, तब उस सम्बन्धमें कभी अनिष्ट पक्षको भी कर देता है। जैसे कि यदि मीमांसक सिद्धान्तके अनुयायी ऐसा अनुमान कर बैठें कि शब्द अनित्य है तो यह उनके लिए अनिष्ट नामक पक्षाभास है, क्योंकि इस सिद्धान्तमें शब्दको आकाशका गुण माना है और नित्य माना है, तो अपने मंतव्यके विरुद्ध अनिष्ट बात स्वयं कहनी पड़ी, यह अनिष्ट नामका पक्षाभास हुआ।

तथा शब्दः श्रावणः सिद्धः ॥६–१४॥

सिद्धनामक पक्षाभास— असिद्ध कोई बात हो तो उसकी ही सिद्धि करनेके लिये अनुमान दिया जाता है। लेकिन जो प्रत्यक्षसे भी सिद्ध है और उसे फिर सिद्ध करनेके लिए कोई अनुमान बनाये तो वह सिद्ध नामका पक्षाभास है। जैसे यह अनुमान बताये कोई कि शब्द श्रावण है। श्रावण मायने श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा जाना जाने वाला है। तो यह सिद्ध नामक पक्षाभास है। वादी हो, प्रतिवादी हो, सबको इससे निर्विवाद इष्ट है कि शब्द श्रावण इन्द्रियसे जाना जाता है। तो जो एकदम सबको अबाधित है, प्रत्यक्ष है, सिद्ध है उसको सिद्ध करनेके लिए अनुमान देवे तो वह सिद्ध नामका पक्षाभास है।

बाधितः प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनैः ॥६–१५॥

बाधित पक्षाभास और उसके प्रकार—बाधित नामके पक्षाभास ५ प्रकारके होते हैं। प्रत्यक्षबाधित, अनुमानबाधित आगमबाधित, लोकबाधित, स्व सुवचनबाधित। जो प्रतीज्ञा प्रत्यक्षसे ही बाधा हो तो वह प्रत्यक्षबाधित नामका पक्षाभास है। जिस प्रतिज्ञामें अन्य अनुमानसे बाधा आती है और फिर उस प्रतिज्ञाको सिद्ध करनेके लिये अपने अनुमानकी हठ की जाय तो अनुमान बाधित प्रत्यक्षाभास हो गया इसी प्रकार जो प्रतिज्ञा सिद्धान्त शास्त्रके विपरीत है और उसे अनुमानसे सिद्ध करे तो वह आगमबाधित नामक पक्षाभास होगा। इसी प्रकार जो बात लोकमें और प्रकारसे मानी जाती है लेकिन लोकमान्यताके विरुद्ध कोई बात सिद्ध की जाय तो वह लोकबाधित पक्षाभास है। कोई पुरुष ऐसी ही बात कह डाले जो अपने ही वचनसे अपनी ही बातमें बाधा आती हो तो उस अनुमानमें यह स्ववचनबाधित नामक पक्षाभास दोष होगा। इन ५ प्रकारके पक्षाभासोंमेंसे प्रत्यक्षबाधितनामक पक्षाभासको कहते हैं।

अनुष्णोऽग्निर्द्रव्यत्वाज्जलवत् ॥६–१६॥

प्रत्यक्षबाधित पक्षाभास—जैसे कोई पुरुष अनुमानसे यह सिद्ध करना चाहे कि अग्नि ठंडी होती है, द्रव्य होनेसे, जलकी तरह। तो सर्वलोकको विदित है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि अग्नि ठंढी नहीं हुआ करती। अग्नि गर्म ही होती है। सभी लोगोंने स्पर्शन इन्द्रियसे इसको भली प्रकार समझ लिया है तो प्रत्यक्षसे अग्नि गर्म है तो भी अग्निको ठंढी सिद्ध करना और उसके अनुमान अङ्ग आदिकके प्रयोग करना। तो ऐसे अनुमान में जो प्रतिज्ञा की जाती है वह प्रतीज्ञा प्रत्यक्षबाधित नामका पक्षाभास वाली है। अब अनुगत बाधित पक्षाभासको देखिये—

अपरिणामी शब्दः कृतकत्वाद्घटवत् ॥६-१७॥

अनुमानबाधित पक्षाभास – किसीने यह अनुमान किया कि शब्द अपरिणामी है। अर्थात् अपरिणमनशील नहीं है क्योंकि कृतक होनेसे घटकी तरह। तो देखिये ! यहाँ इस अनुमानसे बाधा आयगी कि शब्द परिणामी है अर्थक्रियाकारी होनेसे अथवा कृतक होनेसे घटकी तरह। वादीने जो पहिले मिथ्या अनुमान पेश किया है उसका हेतु ही इतना निर्बल है कि उसी हेतुसे उनके अनुमानमें बाधा आती है। भला जो कृतक होगा वह अपरिणामी होगा क्या ? कृतक सब परिणामी होते हैं। तो देखो ! घट परिणामी है तब ही उसमें कृतकृत्व और अर्थ क्रियाकारित्व हेतु पाये जा रहे हैं तब शब्दमें भी कृतकत्व व अर्थक्रियाकारित्व होनेसे परिणामीपना सिद्ध होता है शब्द अर्थक्रियाकारी है—शब्द सुनकर बड़ी बड़ी व्यवहार वृत्तियां होती हैं। शब्द कृतक है उच्चारण किये जानेसे पहले शब्दोंकी उपलब्धि नहीं है। तो यह हेतु तो परिणामीपना सिद्ध करता है। तब यह अनुमान बनाना कि शब्द अपरिणामी है कृतक होनेसे। इससे शब्द अपरिणामी है यह जो प्रतिज्ञा की है इस पक्षमें अनुमानसे बाधा आती है इसलिये यह अनुमानबाधित नामका पक्षाभास हुआ। अब आगमबाधित पक्षाभासको कहते हैं।

प्रेत्यासुखप्रदो धर्मः पुरुषाश्रितत्वादधर्मवत् ॥६-१८॥

आगमबाधित पक्षाभास—अनुमान बनाया गया है कि धर्म परभावमें दुःखको देने वाला है क्योंकि पुरुषोंके आश्रित होनेसे अधर्मकी तरह। जो जो पुरुषोंके आश्रित होते हैं वे दुःखको ही देने वाले होते हैं। जैसे कि अधर्म। यह पुरुषके द्वारा किया जाता है तो वह दुःखका ही देने वाला है। अनुमान तो यों बनाया गया, लेकिन आगममें तो धर्मको स्वर्ग और मोक्षका कारण बताया गया है। और अधर्मको संसार नारकादिक दुर्गतियोंका कारण बताया गया है। और, आगमके इन वाक्योंमें प्रमाणता भी है। ऐसा नहीं है कि केवल वाक्य रचना शास्त्रोंमें लिख दी है और वह अप्रमाणभूत है ऐसा नहीं है। आगम प्रमाण है यह बात पहिले बहुत विवेचनसे सिद्ध कर दी गई है। तो ऐसे प्रमाणभूत आगमसे नहीं बाधा आ रही हो याने आगम तो कहता है यह कि धर्म स्वर्ग मोक्षका हेतुभूत है और अनुमान बताया जा रहा है यह कि धर्म परभवमें दुःखका ही देने वाला है पराश्रित होनेसे अधर्मकी तरह। तो यह अनु-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मान अथवा पक्ष आगमसे बाधित है। अतएव अनुमानबाधिक नामका यह पक्षाभास होता है। जो प्रतिज्ञा की हैं कि धर्म दुःखका देने वाला है यह आगम बाधितपक्षाभास है। अब लोकबाधित पक्षाभासको कहते हैं।

शुचि नरशिरःकपालं प्राण्यङ्गत्वाच्छङ्खशुक्तिवदिति ॥६-१९॥

लोकबाधित पक्षाभास—मनुष्यके शिरकी हड्डी पवित्र है पुरुषोंका अंग होनेसे शंख शुक्तिकी तरह। इस अनुमानमें शंखशुक्तिका दृष्टान्त देकर और चूंकि वह भी प्राणियोंका अंग हैं और देखो लोकमें पवित्र माना जाता है। सो यों ही मनुष्यकी मृत खोपड़ीको भी पवित्र पवित्र शंखको लोग बजाते हैं, शुक्तिसे आम वगैरहको छीलते हैं। शुक्तिके छोटे छोटे कणोंको घरोंमें लोग लगाते हैं तो देखो जैसे प्राणीका अंग होनेसे शंख शुक्ति पवित्र होती है इसी प्रकार मनुष्यके शिर कपाल भी प्राणियोंके अंग होनेसे पवित्र है। ऐसा अनुमान बनाया गया है। लेकिन, लोकमें प्राणियोंके अंगपनेकी अविशेषता होनेपर भी कोई चीजें पवित्र मानी गई हैं वस्तुस्वभावके कारण, तो उसमें वस्तुस्वभावकी अवहेलना करके किसी भी जगह देखा गया कुछ तो दूसरी जगहके लिए भी वही सिद्ध करनेमें अड़ जाना सो यह लोकबाधित नामका पक्षाभास है। जैसे कि गोपिण्डसे उत्पन्न हुआ दूध भी है, दही भी है और गोपिण्डसे मांस और मूत्रकी उत्पत्ति होती है, लेकिन गायसे से सब कुछ निकलनेपर भी दूध दही आदिक तो शुद्ध माने गए हैं। तो जैसे गायसे निकलनेकी समानता होनेपर भी दूध पवित्र है माँस मूत्र आदिक अपवित्र है। इसी तरह प्राणियोंके अंग होनेपर भी शंखशुक्ति पवित्र है और मनुष्यके कपाल शिर आदि अपवित्र हैं। अथवा जैसे मणि—मणि अनेक होनेपर भी कोई मणि विषापहर आदिक प्रयोजनको रचने वाले हैं तो वह मणि महामणि हो जाती है और अन्य मणि बहुमूल्य नहीं हो पाते हैं। तो यह तो वस्तुवोंका खुदका अपने अपने स्वभावकी बात है। और, फिर शंख शुक्तिके इस अवयवमें और मनुष्यकी हड्डीके अवयवमें भी अन्तर है। मनुष्यका शिरकपाल तो चाम माँसके भीतर होता है और शंखशुक्ति यह जीवके ऊपर होती है अथवा स्थूलरूपसे यह कह सकते हैं कि शंखशुक्ति शंख और शुक्तिके कीड़ोंके रहनेका घर है। ऐसी ही विलक्षण बात होनेसे लोकमें शंख शुक्तिको पवित्र माना गया है और मनुष्यके शिरकपालको अपवित्र माना गया है। तो लोकमें तो ऐसी व्यवस्था है और उसके विरुद्ध शंख शुक्ति आदिककी तरह मनुष्यके शिरकपालको भी पवित्र सिद्ध करनेका अनुमान बना दिया जाय तो उसमें जो पक्ष दिया गया, प्रतिज्ञा की गई वह लोकबाधित पक्षाभास होता है। अब स्ववचनबाधित पक्षाभास सुनो—

माता मे बन्ध्या पुरुषसंयोगेऽप्यगर्भत्वात् प्रसिद्धबन्ध्यावत् ॥६-२०॥

हेतु दृष्टान्तका एक दृष्टान्त कोई पुरुष अपने मुंहसे अपने आप यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अनुमान बनाये कि मेरी माता बंध्या है पुरुषका संयोग होनेपर भी गर्भ न रहनेसे प्रसिद्ध बंध्याकी तरह। तो हेतु दृष्टान्त यह अविचारितरम्य होनेपर भी, और सुननेमें बड़ा भला लगनेपर भी बात तो स्ववचनबाधित है। जो पुरुष बोल रहा है वह तो अपनी माताका पुत्र है। तब उसकी माता बंध्या किस तरह होगी? तो अपने वचनसे अपने आपके कहनेमें बाधा होनेपर भी यह कहना कि मेरी माता बंध्या है पुरुषका संयोग होनेपर भी गर्भ न होनेसे। इस अनुमानमें जो प्रतिज्ञा की है वह स्ववचनबाधित नामका पक्षाभाप है। इस तरह पक्ष अथवा प्रतिज्ञा कहो याने साध्य सहित पक्षके ये आभास बताये गए हैं। यद्यपि इष्ट अबाधित असिद्ध ये साध्यके विशेषण हैं, किन्तु साध्यसहित पक्षके बोलनेका नाम भी पक्ष कहलाता है जिसको प्रतिज्ञा शब्दसे कहते हैं। तो ऐसी दृष्टि रखकर पक्षाभासके नामसे यह दोष दिया गया। इस प्रकार अनुमानाभासके महान प्रकरणमें पक्षाभासत क वर्णन हुआ। अब पक्षाभासका वर्णन करनेके बाद हेत्वाभासोंका वर्णन किया जा रहा है।

हेत्वाभासा असिद्धविरुद्धानैकान्तिकाऽकिञ्चित्कराः ॥ ६–२१ ॥

हेत्वाभासके प्रकार—असिद्ध विरुद्ध अनैकांतिक और अकिञ्चित्कर ये चार प्रकारके हेत्वाभास होते हैं। अनुमानके प्रकरणमें हेतुका लक्षण कहा गया था कि जो साध्यके साथ अमिनाभावी रूपसे निश्चित हो उसे हेतु कहते हैं। यह लक्षण बहुत निर्दोष और व्यापक है और हेतुकी हेतुताके लिए जो बातें सम्भव हैं वे सब इसमें आ जाती हैं, और, हेतुमें दोष रखने वाले जितने भी विकल्प हैं वे सब दूर हो जाते हैं। जो हेतु साध्यके बिना कभी होता न हो और वह हेतु उपस्थित हो तो उससे यह निर्णय होता है कि यहाँ यह साध्य अवश्य है। जैसे अग्निके बिना धूम नहीं होता। और धूम पाया तो उससे यह निश्चय होता है कि अग्नि अवश्य है, तो हेतुका लक्षण साध्यका अविनाभावीपना बताया गया है। उन लक्षणके विपरीत जितने भी प्रकारके हेतु होंगे वे सब कमी वाले हेतु हैं, अतएव वे हेत्वाभास हैं। वे हेत्वाभास ४ प्रकारके हैं असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक और अकिञ्चित्कर। उन चार भेदोंमेंसे सर्वप्रथम असिद्धके स्वरूपका निरूपण करते हैं।

असत्सत्तानिश्चयोऽसिद्धः ॥ ६–२२ ॥

असिद्ध हेत्वाभास और उसके प्रकार—जिसकी सत्ता न हो अथवा जिसका निश्चय न हो उस हेतुको असिद्ध हेत्वाभास कहते हैं। इस लक्षणके करनेमें असिद्ध हेत्वाभासके भेद भी सिद्ध हो जाते हैं, अर्थात् असिद्ध हेत्वाभास दो प्रकारका है एक अविद्यमान सत्ताक और दूसरा अविद्यमान निश्चय। जिस हेतुकी सत्ता ही न हो और यों ही अटपट कह दिया है, और जिस हेतुका सत्त्व तो है, कहीं न कहीं हुआ करता है, पर प्रसंगमें उसका निश्चय। नहीं है, ऐसे हेतुको कहते हैं अविद्यमान निश्चय।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अविद्यमान निश्चय हेतुको हेत्वाभास कहते हैं। अब अविद्यमानसत्ताक नामके हेत्वाभासका लक्षण और दृष्टान्त कहते हैं।

अविद्यमानसत्ताकः परिणामी शब्दश्चाक्षुषत्वात् ॥ ६-२३ ॥

अविद्यमान सत्ताक हेत्वाभासका दृष्टान्त सहित वर्णन—जिस हेतुकी सत्ता विद्यमान ही न हो उस हेतुको अविद्यमान सत्ताक कहते हैं। जहाँ हेतु ही नहीं है तो उस हेतुसे साध्यकी सिद्धि क्या हो सकती है ? वह तो स्वरूपसे ही असिद्ध है अतएव वह हेत्वाभास है। जैसे कोई अनुमान प्रयोग करे कि परिणामी शब्दः चाक्षुषत्वात् शब्द परिणामी है चाक्षुष होनेसे, इस अनुमानमें सिद्ध किया जा रहा है कि शब्द अनित्य है, विनाशीक है, परिणमने वाला है। क्योंकि चक्षुइन्द्रियसे जाना जाता है। तो यहाँ हेतु दिया गया चाक्षुषत्वात्। लेकिन बताओ क्या शब्द चाक्षुष है, क्या चक्षु-इन्द्रियके द्वारा शब्दकी जानकारी हुआ करती है ? वह तो श्रावण है, कर्ण इन्द्रियसे जाना जाता है, सो हेतुकी यहाँ सत्ता ही नहीं है। चाक्षुष कोई शब्द ही नहीं हुआ करता तो इस अनुमानमें जो चाक्षुषपनेका हेतु दिया गया है वह हेतु अविद्यमानसत्ताक नामका हेत्वाभास है, इस अविद्यमानसत्ताक हेतुको असिद्ध क्यों कहा गया है ? उसके उत्तरमें कहते हैं।

स्वरूपेणासिद्धत्वात् इति ॥ ६-२४ ॥

अविद्यमानसत्ताक हेतुके हेत्वाभासत्व होनेका कारण – चाक्षुषपना यह जो हेतु दिया गया है वह स्वरूपसे ही असिद्ध है। चक्षुइन्द्रियजन्य ज्ञानके द्वारा ग्राह्य होनेका नाम है चाक्षुषत्व। और, चाक्षुषपना शब्दमें स्वरूपसे ही नहीं है इसलिए असिद्ध है। शंकाकार कहता है कि शब्दकी तो सिद्धि है, सो पौद्गलिक होनेसे शब्दमें चाक्षुषत्वकी भी सिद्धि हो जायगी, क्योंकि जो जो भी वस्तु पौद्गलिक हैं अतएव चाक्षुषपना उसमें है फिर इसको असिद्ध क्यों करते हो ? उत्तरमें कहते हैं कि भाई बहुतसे पदार्थ जो आँखों दिखते हैं वे पौद्गलिक हैं और चाक्षुष हैं यह बात ठीक है. और शब्द भी पौद्गलिक हैं, लेकिन पौद्गलिकताकी बात चाक्षुष और अचाक्षुषमें समान होनेपर भी यह देखिये कि यह शब्द अनुद्भूत रूपस्वभाव है अर्थात् शब्दोंमें रूप स्वभाव प्रकट नहीं है, उसकी उपलब्धि नहीं सम्भव है। जैसे कि गरम जलमें जो कि अग्निके सम्बन्धसे गर्म हुआ गया है और जलमें गर्मी की गई है तो जलमें अग्निका गुण भासुररूप आना चाहिये ना। जैसे अलग रखी हुई अग्निमें भासुर रूप है इसी प्रकार उस जलमें भी भासुर रूप है लेकिन उसका स्वभाव उद्भूत कहाँ है ? देखिये ! उत्तर जिसके लिए दिया जा रहा है उसके ही सिद्धान्तको दृष्टान्तमें लेकर कहा जा रहा है, अथवा जैसे स्वर्णमें अग्निका संयोग है। जब स्वर्ण एकदम गर्म हो गया अग्निमें तपानेसे तो उसमें भासुर रूप तो होना चाहिए, क्योंकि अग्निका संयोग है स्वर्णमें,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लेकिन जैसा अग्निका भासुर रूप नजर आता है चमकदार, प्रकाशमय, ऐसा रूप तो स्वर्णमें नही आता। तो उसे अनुद्भूत स्वभावी माना है, अर्थात् अग्निका जो भासुर रूप है उसका आविर्भाव नही है उस जलमें और स्वर्णमें, इसी प्रकार शब्द पौद्गलिक हैं, पौद्गलिक होनेपर भी उसके रूपका आविर्भाव नही है, अतएव शब्दको चाक्षुष कहना असिद्ध है। तब जो उक्त अनुमान बनाया गया था कि शब्द परिणामी है चाक्षुष होनेसे, उसमें जो चाक्षुष हेतु है वह अविद्यमानसत्ताक नामका असिद्ध हेत्वाभास है।

अनेकों हेत्वाभास माननेकी शंका व उसका समाधान—यहाँ शंकाकार कहता है कि असिद्ध हेत्वाभासके दो लक्षण बताये गए हैं लेकिन असिद्ध हेत्वाभास तो नाना प्रकारके होते हैं—जैसे विशेष्यासिद्ध, विशेषणासिद्ध, आश्रयासिद्ध, आश्रयैकदेश असिद्ध, व्यर्थविशेष्यासिद्ध, व्यर्थविशेषणासिद्ध, व्यधिकरणासिद्ध, भागासिद्ध आदिक नाना प्रकारके असिद्ध हेत्वाभास हो सकते हैं, फिर दो ही प्रकारोंमें उन्हें क्यों बाँधा गया है? उत्तरमें कहते हैं कि वे सभी तरहके असिद्ध हेत्वाभास इस अविद्यमानसत्ताक नामक असिद्ध हेत्वाभाससे जुदे नही हैं क्योंकि उन सभी असिद्धमें असिद्ध हेत्वाभासका लक्षण घटित होता है। जैसे कि स्वरूपासिद्ध नामका हेत्वाभास स्वरूपसे असत् होनेके कारण असत्सत्ताक कहलाता है। इसी तरह विशेष्यासिद्ध आदिक अनेक हेत्वाभासों का उस-उस रूपसे असत् होनेके कारण असत्सत्ताक नामक असिद्ध हेत्वाभास ही कहलाता है।

विशेष्यासिद्ध व विशेषणासिद्धका अविद्यमानसत्ताक असिद्ध हेत्वाभास में अन्तर्भाव—जैसे विशेषसिद्धका दृष्टान्त दिया जाता है कि शब्द अनित्य है, क्योंकि सामान्यवान होकर चाक्षुष होनेसे। तो यहाँ हेतु तो दिया गया है चाक्षुष होनेसे। और उसका विशेषण दिया गया है सामान्यवान होनेपर, तो इस हेतुमें विशेषण विशेष्य दो सम्मिलित करके कहे गए हैं। इनमेंसे चाक्षुषत्व नामक जो विशेष्य है वह असिद्ध है। तो विशेष्यासिद्धमें विशेष्यकी असिद्धि है। तो अर्थ उसका यह हुआ कि चाक्षुषत्व नामक जो विशेष्य है उसकी सत्ता ही नही है। तो यों यह विशेष्यासिद्ध अविद्यमानसत्ताक ही कहलाया। अतएव इसका अविद्यमानसत्ताक नामक हेत्वाभास में अन्तर्भाव हो जाता है। दूसरा असिद्ध हेत्वाभास शंकाकारका ही विशेषणासिद्ध है। जिस हेतुका विशेषण असिद्ध हो उसे कहते हैं विशेषणासिद्ध हेत्वाभास। जिस का उदाहरण है शब्द अनित्य है, चाक्षुष होनेपर सामान्यवान होनेसे। तो यहां हेतु में चाक्षुषपनेको तो बता दिया विशेषण और हेतुकी मुख्यता दी है 'सामान्यवान होनेसे तो इस हेतुका चाक्षुषत्व विशेषण असिद्ध है। तो उसका निष्कर्ष यही तो निकला कि शब्दमें चाक्षुषत्व नहीं पाया जाता है। तो यह विशेषणासिद्ध नामक हेत्वाभास अविद्यमानसत्ताक ही तो कहलाया। इस कारण इसका इस प्रथम असिद्धहेत्वाभास में ही अन्तर्भाव हो जाता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आश्रयासिद्ध व आश्रयैकदेशासिद्धका अविद्यमानसत्ताक असिद्धि हेत्वाभासमें अन्तर्भाव—तीसरा असिद्ध हेत्वाभास कहा गया था आश्रयासिद्ध। जिसका कि उदाहरण है कि 'प्रधान है विश्वका परिणामी होनेसे।' सांख्यसिद्धान्तमें दो तत्त्व मुख्य माने गए हैं—प्रधान और पुरुष। इनमें पुरुषको तो अपरिणामी अविकृत चैतन्यमात्र माना है और जितना भी दृष्टिसे सम्बन्ध है, और जो जो कुछ भी परिणमनशील है वह सब प्रधानका ही विकार बताया गया है। उसके अनुसार यहाँ यह अनुमान किया गया कि प्रधान नामक तत्त्व है, क्योंकि विश्वका परिणामी होनेसे। अर्थात् वह सारे विश्वको रच रहा है। तो अब हेतुका आश्रय है प्रधान याने हेतुसे कहते हैं कि रच रहा है प्रधान, तो प्रधान ही सिद्ध नही है, आश्रय उसका असिद्ध है, क्योंकि परमार्थसे प्रधान नामका कोई तत्त्व नही है। तो इस अनुमानमें हेतुका आश्रय असिद्ध है, यही तो कहा गया। जिसका निष्कर्ष यह निकला कि फिर हेतुकी सत्ता ही नहीं है, प्रधान ही नही है, विश्वका परिणामी कौन हो फिर ! तो हेतुको यह आश्रयसिद्धपना अविद्यमानसत्ताकमें ही अन्तर्निहित हो जाता है। शंकाकारने चौथा असिद्ध हेत्वाभास कहा था—'आश्रयैकदेशासिद्ध:' अर्थात् जिस हेतुमें आश्रयका एक देश असिद्ध हो। उदाहरणमें शंकाकार कहता है कि परमाणु प्रधान आत्मा और ईश्वर ये नित्य हैं अकृतक होनेसे। तो इस अनुमानमें आश्रय बनाये गए हैं चार। परमाणु प्रधान आत्मा और ईश्वर। और, हेतु दिया गया है अकृतक होनेसे याने किये गए नहीं हैं। तो इस हेतुके जो आश्रव हैं उनमें कुछमें अकृतपना है कुछमें नहीं है। अथवा कुछ तो सिद्ध है और कुछ सिद्ध नही है। जैसे परमाणु सिद्ध है आत्मा सिद्ध है, प्रमाणसिद्ध नही है तो इस हेतुके जितने आश्रय दिए गए हैं उनमेंसे कुछ आश्रयासिद्ध हैं, इस कारण यह हेतु आश्रयैकदेशासिद्ध है। इस कथनमें निष्कर्ष यह निकला कि हेतुकी सत्ता नहीं पायी गई उनमें जो आश्रयासिद्ध है। तो उनमें हेतु कहां रहा ? तो यों यह भी अविद्यमानसत्ताक नामके हेत्वाभासमें ही गर्भित हो जाता है।

व्यर्थविशेष्यासिद्ध व व्यर्थ विशेषणासिद्धका अविद्यमानसत्ताक असिद्ध हेत्वाभास अन्तर्भाव – ५ वाँ असिद्ध हेत्वाभास शंकाकारने कहा है व्यर्थ विशेष्यासिद्ध और उसका उदाहरण वह कहता है कि परमाणु अनित्य है कृतक होनेपर सामान्यवान होनेसे। तो इसमें जो हेतु दिया गया है वह व्यर्थ विशेष्य है, अर्थात् जिस का विशेष्य व्यर्थ है ऐसा यह असिद्ध हेतु है। इस हेतुमें कृतकत्वे सति (किया गया होकर) इतना अंश है विशेष्य। तो इस हेतुमें अगर इतना ही कहते–कृतक होनेसे तो भी यह अपना मंतव्य सिद्ध करनेका यत्न रख सकते थे। तो इसमें सामान्यवान होनेसे यह विशेष्य व्यर्थ हुआ और व्यर्थ तो हुआ लेकिन साथ ही साथ असिद्ध भी है। तो यों यह व्यर्थ विशेष्यासिद्ध हेत्वाभास मानता है शंकाकार, लेकिन इसका भी निष्कर्ष यह है कि उस हेतुकी सत्ता नही है पक्षमें अतएव यह भी अविद्यमानसत्ताक नामके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हेत्वाभासमें ही गर्भित हो जाता है। छठवां ६वाँ व्यर्थविशेषणासिद्ध नामका हेत्वाभास, जिसका उदाहरण है कि परमाणु अनित्य है सामान्यवान होकर मृतक होनेसे। इस अनुमानमें 'कृतक होनेसे' यह तो है विशेष्य और 'सामान्यवान होकर' यह है विशेषण। तो परमाणुवोंको अनित्य साबित करनेके लिए कृतकपना इतना ही हेतु पर्याप्त है। इतना होनेपर फिर 'सामान्यवान होकर' इस विशेषणके देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, यह विशेषण व्यर्थ है। तो इस व्यर्थ विशेषणासिद्ध नामके हेत्वाभास में निष्कर्ष यह निकला कि सय विशेषणके जो हेतु दिया गया है वह अविद्यमानसत्ताक है। विशेष्य और विशेषण ये व्यर्थ हो जाते हैं ऐसे हेतुको अविद्यमानसत्ताकमें ही अन्तर्निहित कर लेना चाहिए।

व्यधिकरणासिद्ध यदि साध्यविनाभावित्वसे रहित है तो उसका अविद्यमानसत्ताक असिद्ध हेत्वाभासमें अन्तर्भाव — ७ वाँ असिद्ध हेतु बताया है व्यधिकरणासिद्ध जिसका अधिकरण भिन्न हो ऐसे हेतुको व्यधिकरण कहते हैं और इसी कारण असिद्ध है उसे व्यधिकरणासिद्ध कहते हैं। इसका उदाहरण दिया गया है शब्द अनित्य है क्योंकि कपड़ा कृतक है। तो इस अनुमानमें जो हेतु दिया गया है पट का कृतकपना, सो पटका कृतकपना पटमें है और शब्दका अनित्यपना शब्दमें बताते हैं, तो अब यहाँ यह व्यधिकरण हो गया। हेतुका अधिकरण अन्य है और साध्यका अधिकरण अन्य कहा जा रहा है, इसलिए कृतकत्व हेतु असिद्ध हो गया। सो यह अविद्यमानसत्ताक नामक असिद्ध हेत्वाभासमें ही आ गया। शंकाकार कहता है कि शब्दमें कृतकपना तो है ही फिर कृतकपन हेतुको असिद्ध क्यों कहा जा रहा है? उत्तरमें कहते हैं कि यह बात अयुक्त है क्योंकि यहाँ यह कृतकपना पटमें बताया जा रहा, तो पटका कृतकपना शब्दोंमें असिद्ध है। शब्दमें रहने वाले कृतकपनेको तो हेतु रूपमें नहीं कहा किन्तु पटमें रहने वाले कृतकपनेको हेतुरूपसे कहा गया है, इसलिए पटकी कृतकता शब्दमें असिद्ध है तब यह अविद्यमानसत्ताक नामका ही हेत्वाभास हुआ। अन्य आधारमें बताया गया हेतु अन्य आधारमें सिद्ध कर दिया जाय सो नहीं, पटमें बताई गई कृतकता शब्दमें साध्यको सिद्ध करदे ऐसा नहीं हो सकता, अन्यथा इसमें तो बड़ी विडम्बना बन जायगी। किसी भी जगह कुछ भी हेतु बताकर सभी जगह कुछ भी साध्य सिद्ध कर दिया जायगा। इससे व्यधिकरणासिद्धमें व्यधिकरणत्व है और इसी कारण असिद्धत्व है, लेकिन अन्यमें बताया गया हेतु पक्षमें तो असिद्ध है, सत्ता है ही नहीं इस कारण यह व्यधिकरणासिद्ध अविद्यमानसत्ताक असिद्ध हेत्वाभास ही कहलायेगा।

भागासिद्ध यदि साध्याविनाभावित्वसे रहित है तो उसका अविद्यमानसत्ताक असिद्ध हेत्वाभासमें अन्तर्भाव — अब ८ वाँ हेत्वाभास शंकाकारने बताया भागासिद्ध। पक्षके एक भागमें हेतु असिद्ध सो उसे भागासिद्ध कहते हैं। एक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हेत्वाभास बताया गया था आश्रयैकदेशासिद्ध, लेकिन आश्रयैकदेशासिद्धमें यह अन्तर है कि आश्रयैकदेशमें आश्रयका एक देश असिद्ध है और हेतु सिद्ध ही है किन्तु भागासिद्धमें आश्रयके एक देशमें हेतु असिद्ध है और आश्रयका एक देश सिद्ध है भागासिद्धमें उदाहरण दिया गया है कि शब्द अनित्य है, क्योंकि पुरुषके प्रयत्नके बाद उत्पन्न होता है। तो यहाँ जो हेतु दिया गया है कि प्रयत्नके बाद उत्पन्न हुआ तो यह हेतु सब पदार्थोंसे घटित नहीं होता। बतलावो मेघ आदिकके जो शब्द होते हैं वे क्या पुरुषके व्यापारसे उत्पन्न हुए हैं ? तब देखिये कि आश्रयका एक देश यहाँ असिद्ध हुआ ना, इस सम्बन्धमें यह निरखिये कि व्यधिकरणासिद्धत्व और भागासिद्धत्व ये यौग आदिक दर्शनोंमें प्रक्रियाका दिखाना मात्र है। वास्तवमें तो यह हेतुका दोष नहीं है, अन्यथा व्यधिकरणमें भी जैसे कि "शकट नक्षत्र उदित होगा कृत्तिकाका उदय होनेसे" तो अब यह हेतु तो सही है मगर अधिकरण भिन्न–भिन्न हैं। कृत्तिकाका उदय कृत्तिकामें है, रोहणीका उदय रोहणीमें होगा, तो एक व्यधिकरण होनेसे हेतु झूठा हो जाता है नियम न बना। देखो यह उत्तर पूर्वचर अनुमान सही है और अधिकरण भिन्न भिन्न हैं। अथवा जैसे अनुमान बनाया गया कि ऊपर वर्षा हुई है क्योंकि पूर देखो जा रहा है। तो यहाँ हेतु तो पूर दर्शन है, सो पूर दर्शन तो है नीचे भागमें और साध्य बताया है ऊपर भागमें। वर्षाके समयका तो अधिकरण भिन्न भाग है, तो इतने मात्रसे क्या यह अनुमान गलत हो जायगा ? ये दोनों अनुमान सही हैं इसलिए व्यधिकरणासिद्धत्व दोषके लिए नहीं और भागासिद्धत्व भी दोषके लिए नहीं। देखो ! ऊपर वर्षा हुई है नीचे पूर दिखनेसे, इसमें भागासिद्धकी झलक है लेकिन अनुमान सही है।

साध्याविनाभावित्वसे गम्यगमकभाव होनेके कारण व्यधिकरणतासे हेतुके सदोषत्व व निर्दोषत्वका अनिर्णय—बात असलमें यह है कि गम्यगमक भाव अविनाभावके कारण हुआ करता है व्यधिकरण या अव्यधिकरणताके कारण नहीं। वह श्याम है देवदत्तका पुत्र होनेसे, यह भी अनुमान सही बन जाय, क्योंकि व्यधिकरण दोष इसमें नहीं है, लेकिन अविनाभाव तो नहीं है, इस कारण अनुमान सही नहीं है। और कोई अनुमान बनाये कि मकान सफेद है कौवाके काला होनेसे। तो अब इसमें भागासिद्धकी कोई बात नहीं है। पर क्या अनुमान बन जायगा ? यहाँ व्यधिकरणता या अव्यधिकरणताका होना गम्यगमक भावका कारण नहीं, किन्तु अविनाभाव होना ही गम्यगमक भाव होनेके कारण है। व्यधिकरण होकर भी अनेक जगह हेतु साध्यका गमक हो जाता है। व्यधिकरण भी साध्यका गमक होता है, ऐसा माननेपर अविद्यमानसत्ताकरूप असिद्धपना विरोधको प्राप्त नहीं होता, क्योंकि गुरुवोंका यह अभिप्राय नहीं है कि जिसकी सत्ता ही न हो पक्षमें वह असिद्ध कहलाता है। फिर क्या अभिप्राय है ? यह अभिप्राय है कि साध्यके साथ अथवा दृष्टान्तके साथ या दोनोंके साथ जिस हेतुकी अविनाभावी सत्ता नहीं है उसे असिद्ध कहते हैं। तो इस प्रकार व्यधिकरण नामका जो अलगसे असिद्ध हेत्वाभासकी बात शंकाकार कह रहा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

था वह सिद्ध न हुई, क्योंकि कहीं कहीं व्यधिकरण होकर भी हेतु साध्यका गमक होता है।

साध्याविनाभावित्वसे गम्यगमकभाव होनेके कारण भागासिद्धता से भी हेतुके सदोषत्व व निर्दोषत्वका अनिर्णय—भागासिद्ध भी जहाँ कहीं हेतु का साध्यके साथ अविनाभाव मिल जाय तो वहाँ गमक होता है इसलिए भागासिद्ध भी एकान्ततः हेत्वाभास हो सो बात नहीं है। भागासिद्ध होनेपर भी यदि हेतुका साध्यके साथ अविनाभाव न हो तो वह गमक नहीं होता। भागा सिद्धमें जो यह दृष्टान्त दिया था कि शब्द अनित्य है, क्योंकि प्रयत्नके अनन्तर उत्पन्न होता है, तो इसमें दोष यों भी नहीं है कि प्रयत्नके अनन्तर होना अनित्यत्वके बिना कहीं भी नहीं देखा जाता अर्थात् जो बात प्रयत्नके बाद होती है वह तो अनित्य होती ही है इस कारण यह हेतु दूषित नहीं है। अब रहा शब्दोंके बारेमें कि शब्द प्रयत्नके बिना ही हुआ करते हैं। तो जितनेमें भी प्रयत्नानन्तरीयकत्व हेतु पाया जाय उतने शब्द का अनित्यत्व तो इस हेतुसे सिद्ध हो ही जाता है। अब उसके अलावा जो भी शब्द है, जो पुरुषके प्रयत्नके बिना मेघ आदिकमें हो रहे हैं वे कृतकत्वात् इस हेतुसे सिद्ध हो जावेंगे। अथवा प्रयत्नानन्तरी एकत्व हेतुके ग्रहणकी सामर्थ्यसे यहाँ ऐसे ही शब्दोंको पक्षमें लिया गया है जो प्रयत्नके अनन्तर उत्पन्न हुआ करते हैं। तो प्रयत्नसे उत्पन्न हुए शब्दोंमें ही प्रयत्नसे उत्पन्न हुए हेतुसे अनित्यपना सिद्ध किया जा रहा है तो भागासिद्ध दोष होके लिए वहां कोई अवकाश नहीं। क्योंकि जितने भी पुरुषप्रयत्नके द्वारा उत्पन्न हुए शब्द हैं उन सबमें प्रयत्नानन्तरीयकत्व हेतु पाया जा रहा है। तो भागासिद्धपनेका दोष उसमें कहा जा सकता है। इस प्रकार असिद्ध हेत्वाभासके प्रसंगमें प्रथम भेदका वर्णन किया जा रहा है कि जिसकी सत्ता विद्यमान न हो वह अविद्यमानसत्ताक नामका हेत्वाभास है। वह व्यापक रूपसे अनेक असिद्धोंको अपनेमें गर्भित करता हुआ सिद्ध हो जाता है। अब इस समय असिद्धहेत्वाभासका जो द्वितीय प्रकार है उसका वर्णन करते हैं —

अविद्यमाननिश्चयो मुग्धबुद्धिं प्रत्यग्निरत्र धूमादिति ॥६–२५॥

अविद्यमाननिश्चयनामक असिद्ध हेत्वाभास—जिसका निश्चय विद्यमान नहीं उसे अविद्यमान निश्चया नामक हेत्वाभास कहते हैं। जैसे मुग्ध बुद्धियों के प्रति ऐसा कहना कि यहां अग्नि है, धूम होनेसे तो उसके लिये यह अनुमान अविद्यमान निश्चय नामक हेत्वाभास कहलाये ? तो उसके उत्तरमें सूत्र कहते हैं।

तस्य वाष्पादिभावेन भूतसंघाते संदेहात् ॥६–२६॥

अविद्यमाननिश्चयताका कारण—मुग्धबुद्धिके प्रति उक्त हेतुमें अविद्यमान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निश्चयता यों है कि मुग्ध बुद्धिवाले पुरुषको वाष्प भाव आदिकके भावसे धूममें संदेह हो सकता है अर्थात् धुवां हो वहाँ वह भाप समझलें। कहीं भाप हो तो उसे धूम समझले। यहांपर साध्य साधनमें जिसकी बुद्धि व्युत्पन्न नहीं है वह पुरुष धूम तो इस प्रकारका हुआ करता, भाप इस तरह हुआ करता इस तरहका विवेक करनेमें समर्थ नहीं है। तो ऐसे पुरुषके प्रति जिसका हेतुके विद्यमान होनेका निश्चय नहीं है कभी धूमको भाप समझले, कभी भापको धूम समझले. भाप और धूममें विवेक करने की जहाँ ताकत नहीं है क्योंकि धूम और भापमें स्थूल विशेष अन्तर नहीं दिखाई देता। अन्तर तो विदित हो जाता है, पर समझदार लोग इसे पहिचान पाते हैं। तो मुग्ध बुद्धिजनोंके लिये यह अनुमान किया जाता तो इससे यह हेतु उनको हेत्वाभास बन जाता है अथवा अविद्यमान निश्चय नामक असिद्ध हेत्वाभासका दार्शनिक दृष्टिसे भी एक दृष्टान्त सुनो—

सांख्यं प्रति परिणामी शब्दः कृतकत्वादिति ॥६–२७॥

अविद्यमाननिश्चयत असिद्ध हेत्वाभासका एक दार्शनिक दृष्टान्त— सांख्यसिद्धान्तानुयायियोंके प्रति यह अनुमान कहा जाय कि शब्द परिणामी होता है कृतक होनेसे। चूंकि यह किया गया है अतएव शब्द परिणामी है। सो यद्यपि यह अनुमान सही है। जो जो कृतक होता है वह वह परिणमनशील होता ही है। परिणमनशील तो सभी पदार्थ हैं लेकिन जो कृतक हैं वे स्पष्ट परिणामी विदित होते हैं। तो अनुमानका सही होनेपर भी सांख्यसिद्धान्तानुयायीके प्रति यह अनुमान हो तो उन के प्रसगसे कृतकत्यात् यह हेतु अविद्यमान निश्चय नामक हेत्वाभास बनता है। क्यों बनता है यह हेतु सांख्यसिद्धान्तानुयियोंको अविद्यमान निश्चय नामक हेत्वाभास, उस का कारण बताते हैं।

तेनाज्ञातत्वात् ॥६–२८॥

उक्त दार्शनिक दृष्टान्तमें हेतुकी अविद्यमाननिश्चयताका कारण— सांख्यसिद्धान्तानुयायियों द्वारा यह कृतकत्व हेतु अज्ञात हैं, इसका कारण यह है कि सिद्धान्तमें प्रत्येक कार्योंका कारणमें प्रतिसमय सद्भाव माना गया है। आविर्भावको छोड़कर और कुछ कृतकत्व वहां प्रसिद्ध है नहीं, किसी कारणके व्यापारसे ऐसे स्वरूपका लाभ हो जो पहिले न हो, यह सिद्धान्तमें माना नहीं गया है। क्योंकि सब कुछ सब जगह सबमें रहता है। केवल कारणोंके द्वारा कार्यका आविर्भाव किया जाता है। तो ऐसे सिद्धान्तकी कल्पनामें कृतकत्व हेतु कहां ज्ञात है? वह अज्ञानकी तरह है। तब हेतुका निश्चय न बन सका, अतएव यह हेतु अविद्यमान निश्चय नामक असिद्ध हेत्वाभास हो जाता है।

अन्याभिमत अन्य असिद्धोंका अविद्यमाननिश्चय हेत्वाभासमें अंतर्भाव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कुछ और भी असिद्ध हेत्वाभास हैं जिनका कि अविद्यमान निश्चय नामक असिद्धहेत्वाभासमें अन्तर्भाव होता है । जैसे संदिग्धविशेष्य—संदिग्धविशेष्यासिद्ध का एक यह उदाहरण है कि आज तक भी कपिल रागादिकयुक्त है क्योंकि पुरुषपना होनेपर भी अब तक भी तत्त्वज्ञान उत्पन्न न होनेसे । इसी प्रकार संदिग्ध विशेषणासिद्ध बतलाते हैं कि आज तक भी रागादिकयुक्त कपिल है क्योंकि सर्वदा तत्त्वज्ञानसे रहित होनेपर पुरुषपना होनेसे । तो ये सब असिद्धके भेद कोई अन्यतरासिद्ध हैं, कोई उभयासिद्ध हैं अर्थात् किन्हीको वादी और प्रतिवादीमेंसे कोई एक नही मान रहा और किसीको वादी प्रतिवादी दोनों नही मान रहे, तो वे सब अविद्यमाननिश्चय नामक असिद्ध हेत्वाभासमें गर्भित हो जाते हैं । शंकाकार कहता है कि अन्यतरासिद्ध नामका हेत्वाभास कोई होता ही नही है, वह किस प्रकार ? सो देखिये ! दूसरेके द्वारा असिद्ध है ऐसा कहा जानेपर यदि वादी उस मंतव्यके साधक प्रमाणको नही कहते हैं तो प्रमाणाभासकी तरह दोनोंके ही असिद्ध हो गया । और, यदि वादीके साधक प्रमाणको कहता हैं तो प्रमाण पक्षमें न रह सका तो दोनोंके लिए भी यह असिद्ध बन गया अन्यथा साध्य भी अन्यतरासिद्ध कभी नही सिद्ध हो सकेगा । तब तो प्रमाणका वर्णन करना; कोई युक्ति प्रमाण देना ये सब व्यर्थ हो जायेंगे । उत्तरमें कहते हैं कि ऐसी शंका करना सही नही है क्योंकि वादी अथवा प्रतिवादीके द्वारा सभ्योंके समक्ष अपने द्वारा दिया गया हेतु प्रमाणसे जब तक दूसरेके प्रति सिद्ध नही कर लिया जाता तब तक उसके प्रति इसकी प्रसिद्धि न होनेसे अन्यतरासिद्ध रहेगा ही । शंकाकार कहता है कि इस तरह तो इसकी असिद्धता भी गौण हो जायगी । उत्तरमें कहते हैं कि हाँ ऐसी ही बात है । प्रमाणसे सिद्धिका अभाव होनेसे यह असिद्ध है पर स्वरूपसे असिद्ध नही है । एक होता है प्रमाणसे असिद्ध और एक होता है स्वरूपसे असिद्ध । तो जो वादी कह रहा है जिसे समझा है वह स्वरूपसे असिद्ध नही है किन्तु प्रमाणसे सिद्ध नही हो पा रहा है अभी अर्थात् प्रतिवादी द्वारा सम्मत नही हो सका है तो उसे प्रमाणसे ही असिद्ध कह सकते हैं । ऐसा तो नही होता कि रत्नादिक पदार्थ यदि वास्तविक रूपसे कोई न जान पाये तो उतने काल तक वह मुख्यतया रत्नाभास बन जाय । न जाना जाय कुछ तो यह लोगोंकी बात है, मगर रत्न आदिक पदार्थ तो जिस स्वरूपसे हैं उस ही स्वरूप वाले हैं । तो प्रमाणसम्पर्कमें वह असिद्ध है और ऐसे ही यह अविद्यमाननिश्चय नामका हेत्वाभास बन जाता है । इस तरह असिद्ध नामक हेत्वाभासके दो प्रकार बताये हैं । अब विरुद्ध हेत्वाभासका स्वरूप बतला रहे हैं ।

विपरीतनिश्चिताविनाभावोविरुद्धः अपरिणामी शब्दकृतकत्वात् ॥६-२९॥

विरुद्धहेत्वाभासका वर्णन—विरुद्धहेत्वाभास उसे कहते हैं कि साध्यके विपरीत धर्मके साथ जिस हेतुका अविनाभाव निश्चित हो । अर्थात् हेतुसे सिद्ध करना चाहते थे कुछ और उसी हेतुसे हो जाय विपरीत सिद्ध । तो जिस हेतुका विपरीत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

के साथ अविनाभाव निश्चित होता है उसे विरुद्ध हेत्वाभास कहते हैं। जैसे कि कोई यह अनुमान बनाये कि शब्द अपरिणामी है कृतक होनेसे तो यहाँ देखिये कृतकत्वकी व्याप्ति अपरिणामी साध्यसे विपरीत परिणामीके साथ है। अर्थात् जो कृतक होता है वह परिणामी हुआ करता है। तो विपरीतके साथ अविनाभाव होनेसे यह हेतु विरुद्ध हेत्वाभास कहलाया। जो हेतु साध्यस्वरूपसे विपरीतके साथ है, जिसका अविनाभाव विपरीतके साथ निश्चित् हो वह हेतु विरुद्ध हेत्वाभास कहलाता है। जो पूर्वाकारको तो छोड़े और उत्तर आकारको ग्रहण करे और तिसपर भी वस्तुत्व रहा आया तो ऐसे परिणामके साथ हो तो कृतकत्वका अविनाभाव है। सो ऐसा अन्दरमें, बहिरङ्गमें सब जगह सबको प्रतीति होती है कि हां जो कृतक होता है उसमें ऐसी व्यवस्था बनती है। तो कृतक होता है उसमें ऐसी व्यवस्था बनती है। तो कृतकपना ना तो सर्वथा नित्यमें बन सकता और न सर्वथा क्षणिकमें बन सकता। इसी कारण कृतकत्वके साथ परिणामित्वकी व्याप्ति है। सर्वथा नित्य और सर्वथा क्षणिकमें कृतकत्व धर्म नहीं रहता। तो कृतकत्व हेतुसे सिद्ध करने तो चले थे कि वस्तु अपरिणामी सिद्ध हो जाय, ध्रुव सिद्ध हो जाय, लेकिन कृतकत्वकी व्याप्ति ध्रुवसे विपरीत परिणामीके साथ है। अतएव यह हेतु विरुद्धहेत्वाभास कहलायेगा।

यौगाभिमत आठ विरुद्धभेदोंमेंसे पक्षविपक्षव्यापक सपक्षावृत्ति नामक प्रथम विरुद्धभेदका विरुद्धहेत्वाभासमें अन्तर्भाव—नैयायिक आदिकने जो विरुद्धके भेद कहे हैं वे भी विरुद्धके इस ही लक्षणसे लक्षित हैं, इस कारण विरुद्धके इस हीं लक्षणमें उनका अन्तर्भाव होता है। वे ८ विरुद्ध भेद कौनसे हैं कि सपक्षके होनेपर तो विरुद्ध चार प्रकारके माने हैं और सपक्षके न होने पर विरुद्ध चार प्रकारके माने हैं, इस तरह ८ प्रकारके विरुद्ध हेतु कहे हैं। वे सब इस ही लक्षणमें गर्भित होते हैं इसका ही वर्णन अब करते हैं। पहिले उन चार विरुद्धोंको बहलाते हैं जो सपक्षके होनेपर हुआ करते हैं। जैसे पहिला है पक्ष—विपक्षव्यापकसपक्षावृत्तिः याने पक्ष और विपक्षमें रहने वाला और सपक्षमें न रहने वाला और सपक्षमें न रहने वाला जैसे कि शब्द नित्य है। उत्पत्तिधर्मवाला होनेसे। अब यहां जो हेतु दिया गया है उत्पन्न व धर्म वाला होनेसे तो उत्पन्नत्व धर्मपना पक्ष किए गए शब्दमें रहता है। और नित्यसे विपरीत जो अनित्य हैं घट आदिक उनमें भी उत्पन्नत्वधर्म रहता है अर्थात् पक्षकी भांति यह हेतु विपक्षमें भी रहता है किन्तु नित्य साध्यका सपक्ष हैं आकाश आदिक सो उन सपक्षोंके होनेपर भी सपक्षमें यह हेतु नहीं रह रहा सो यह जो प्रथम विरुद्ध भेद है कि जो पक्ष विपक्षमें व्यापक हो और सपक्षमें न रहता हो, उसे परख लीजिये कि विरुद्ध नामका जो हेत्वाभास कहा गया उस हीमें इसका अन्तर्भाव जानना याने विपक्षमें चूंकि यह हेतु गया है, तो इस हेतु का विपरीतके साथ अविनाभाव होनेके कारण विरुद्ध हेत्वाभासमें ही इसको अन्तर्भूत समझना चाहिए।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विपक्षैकदेशवृत्तिपक्षव्यापक सपक्षावृत्ति नामक विरुद्ध भेदका विरुद्ध हेत्वाभासमें अन्तर्भाव – दूसरा विरुद्ध भेद कहा है विपक्षैकदेशवृत्ति पक्षव्यापक सपक्षावृत्ति अर्थात् जो विपक्षके एक देशमें रहे और पक्षमें रहे तथा सपक्षमें न रहे–जैसे कि शब्द नित्य हैं, सामान्यवान होकर हम लोगोंके द्वारा प्रत्यक्षभूत होनेसे, तो यहाँ हेतु बताया गया है सामान्यवान होकर हम लोगोंके बाह्य इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष होनेसे, तो तुम्हारा यह विशेषण हेतु पक्षमें चला गया। पक्ष है शब्द और शब्द सामान्यवान है और हम लोगोंके द्वारा बाह्य इन्द्रिय याने श्रवण इन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्षभूत है। बाह्य इन्द्रियके द्वारा ग्रहणमें आ जाय ऐसी योग्यता मात्र यह बाह्य इन्द्रिय प्रत्यक्षपना विवक्षित है। तो अब देखिये कि यह हेतु पक्षमें तो आ गया और विपक्षके एक देशमें भी आ गया। साध्य है नित्यपना, उसका विपक्ष है अनित्य। तो अनित्य घट आदिक हैं, उनमें भी यह हेतु पाया गया है कि सामान्यवान होकर हम लोगोंके बाह्य इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष होनेसे। घट भी सामान्यवान है। घटमें घटत्व माना गया है, और हम लोगोंको नेत्रादिक इन्द्रियके द्वारा ग्राह्य हैं, और, सुख आदिकमें यह हेतु पाया नहीं जाता, तो नित्यके विपक्ष अनित्य हुए ना, तो उन अनित्यमेंसे कुछ अनित्यमें हेतु पाया जाय, कुछ अनित्यमें हेतु न पाया जाय इसीको कहेंगे विपक्षके एक देशमें रहना। सो विपक्ष घट भी है और सुख भी है, किन्तु हेतु घटमें पाया गया और सुखमें पाया नहीं गया। तो यह हेतु विपक्षके एक देशमें भी रहा, पक्षमें भी रहा। मगर सपक्षमें नहीं रहता। साध्य बताया गया है यहाँ नित्य और जो जो नित्य माना गया हो वह कहलायेगा सपक्ष। तो आकाश भी नित्य माना गया है तो सपक्ष भी हेतु रहना चाहिए। तो सपक्षमें हेतु रहता नहीं। आकाश हम लोगोंके बाह्य इन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्षभूत कहाँ हो रहा? और, सामान्यमें तो यह हेतु पाया ही न जा सकेगा, क्योंकि विशेषण दिया गया है कि सामान्यवान होकर। सामान्य तो सामान्यवान नहीं है, वह तो स्वयं सामान्य है। तो सामान्यवान होकर इस विशेषणके कहे जानेसे हेतु सामान्यसे भी हट गया। तो यों यह हेतु विपक्षके एक देशमें रहा, पक्षमें रहा और सपक्षमें न रहा। इस प्रकारका यह दूसरा विरुद्ध भेद बताया गया है। लेकिन इसमें भी तो यही ध्वनित हुआ कि हेतुकी साध्य विरुद्धके साथ व्याप्ति है। विपक्षके साथ, विपरीत साध्यके साथ व्याप्ति होनेके कारण यह विरुद्ध हेत्वाभासमें ही गर्भित होता है।

पक्षविपक्षैकदेशवृत्ति सपक्षावृत्ति नामक विरुद्ध भेदका विरुद्धहेत्वाभासमें अन्तर्भाव – तीसरा विरुद्ध भेद बताया है पक्षविपक्षैकदेशवृत्ति और सपक्षावृत्ति अर्थात् जो पक्षके एक देशमें रहे, विपक्षके एक देशमें रहे और सपक्षमें रहे। जैसे कि अनुमान बनाया गया कि वचन और मन सामान्य विशेषवान हैं और हम लोगोंके बाह्य इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष हैं क्योंकि नित्य होनेसे। तो इस अनुमानमें हेतु तो दिया है नित्यत्व, पक्ष बनाया है वचन और मन। साध्य बनाया है सामान्य विशेषवान है और हम लोगोंके बाह्य इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष है। तब यहाँ देखिये! नित्यत्व हेतु पक्षके एक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

देशमें रह रहा है। यहां पक्ष बताये गए हैं दो—वचन और मन। सो नित्यत्व हेतु मनमें तो है पर वचनमें नही है। तो यह हेतु पक्षके एक देशमें रहा और विपक्षके एक देशमें भी रह रहा। यहाँ साध्य बताया गया है सामान्यविशेष्यवान और हम लोगोंके बाह्य इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष। तो उसके विपरीत कुछ होगा ना! जो सामान्य विशेषवान हो और हम लोगोंके द्वारा बाह्य इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष न हों ऐसे पदार्थ माने गए हैं आकाश आदिक शङ्काकारके सिद्धान्तमें। तो देखिये! कि आकाश आदिकमें हेतु तो पाया गया किन्तु साध्य नही पाया जा रहा। हम लोगोंके बाह्य इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष तो नही हो रहा आकाश, सो एक जगह तो विपक्षमें हेतु पाया गया, किन्तु किसी और विपक्षमें यह हेतु भी नही पाया जाता। साध्य बनाया गया है हम लोगोंको बाह्य इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष है। तो विपक्ष है जो बाह्येन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष न हो, ऐसे सुखादिक हैं उसमें नित्यत्व हेतु नही पाया जाता। तो यह हेतु किसी विपक्षमें पाया जाता, किसी विपक्षमें नही पाया जाता, इस कारण विपक्षके एक देशमें रहने वाला सिद्ध हुआ है और सपक्षमें रहता नही। सपक्ष कहलाया वह शब्द जो हम लोगोंके बाह्येन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्षभूत है तथा घट आदिक पदार्थ ये सभी हम लोगोंके बाह्येन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्षभूत हैं, लेकिन इसमें नित्यत्व धर्म नही पाया जा रहा, इस कारण सपक्षमें न रहा, हेतु और सामान्यकी समक्षता तो सामान्य विशेषवान होनेपर इस विशेषणसे ही कट गया है, अर्थात् सामान्य सामान्यविशेषवान कहाँ है? वह तो केवल सामान्यरूप है. और योगी पुरुषोंके बाह्य इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष हैं आकाश आदिक, लेकिन वे हम लोगोंके द्वारा ग्रहणमें तो नही आ रहे। अतएव वे सपक्षमें ही नही माने जाते। इतनी बहुत–बहुत छोटी–छोटी बातोंका विस्तार बनाकर कहा जाने वाला यह विरुद्ध भेद भी इस विरुद्ध हेत्वाभासके लक्षणसे लक्षित है। अतएव यह पक्षविपक्षैकदेशवृत्ति सपक्षावृत्तिनामक विरुद्धभेद हेत्वाभासमें ही गर्भित होता है।

पक्षैकदेशवृत्तिविपक्षसपक्षावृत्ति विपक्षव्यापक नामके विरुद्धभेदका विरुद्धहेत्वाभासमें अन्तर्भाव—सपक्षके होनेपर जो चार प्रकारके विरुद्ध हेतु बताये जा रहे हैं उनमेंसे यह अन्तिम विरुद्ध हेतु है—पक्षैकदेशवृत्ति सपक्षावृत्ति, विपक्ष व्यापक जैसे कि अनुमान बनाया गया कि वचन और मन नित्य है उत्पत्ति धर्म वाला होनेसे तो यहां हेतु है उत्पत्ति धर्मवाला होना। वह पक्षके एक देशमें रह रहा है। इस अनुमानमें पक्ष बनाये गये हैं वचन और मन। सो उनमेंसे वचन तो उत्पत्ति धर्मवाला है किन्तु मनमें उत्पत्ति धर्म नही पाया जाता। मनको विशेषवादियों ने नित्य माना है और उत्पत्ति धर्म वाला नही माना। यहाँ साध्य बनाया गया है नित्य होना। तो उसके सपक्ष हैं आकाश आदिक, जो नित्य हों वे सपक्ष कहलायेंगे। तो आकाश आदिक जो सपक्ष हैं, नित्य हैं उनमें हेतु नही रह रहा है। आकाश तो उत्पत्ति धर्म वाला नहीं है, और, साध्यसे जो विपरीत होता है विपक्ष। साध्य बनाया गया है यहां नित्य, नित्यसे उलटा हुआ अनित्य जो जो अनित्य पदार्थ होंगे वे सब

Version 1

विपक्ष कहलायेंगे। तो घट पट आदिक पदार्थ विपक्ष हुए सो विपक्षमें यह हेतु सब जगह रह रहा है। इस प्रकार इस अनुमानमें जो हेतु कहा गया है वह विरुद्ध भेद वाला है किन्तु यह कुछ अलगसे हेत्वाभास नही है। इसका अन्तर्भाव विरुद्ध हेत्वाभासमें ही हो जाता है, क्योंकि हेतुका नित्यसे विरुद्ध अनित्यमें व्याप्ति पायी जाती है। जो जो उत्पत्ति धर्मवाले होंगे वे अनित्य ही तो होंगे।

पक्षविपक्षव्यापक अविद्यमान सपक्ष विरुद्ध भेदका विरुद्धहेत्वाभासमें अन्तर्भाव अब चार विरुद्ध ऐसे बताये जा रहे हैं शंकाकारके द्वारा जो सपक्षके होनेपर हुआ करते हैं। उनमेंसे प्रथम भेद है पक्षविपक्षव्यापक व अविद्यमान सपक्ष अर्थात् जो हेतु पक्ष और विपक्षमें रहे और जिसका विद्यमान न हो याने सपक्ष हो ही नही। जैसे अनुमान बनाया गया कि शब्द आकाशका विशेष गुण है क्योंकि प्रमेय होनेसे, तो यहाँ हेतु रहा प्रमेयत्व सो यह प्रमेयत्व हेतु पक्षभूत शब्दमें तो चला गया अर्थात् शब्द भी प्रमेय है, साथ ही साथ यह हेतु विपक्षमें आ जाता है। विपक्ष कौन होगा? जिसमें साध्य न हो। साध्य यहाँ बताया गया है आकाश विशेष गुणका। अब जो आकाशका विशेष गुण न हो वह कहलायेगा विपक्ष, तो ऐसे घट पट आदिक अनेक पदार्थ जो आकाशके विशेषगुण रूप नही हैं, तो विपक्ष घट आदिकमें भी प्रमेयत्व हेतु पहुँचता है तो हेतु विपक्षमें ही चला गया और सपक्षमें हेतु यों नही जाता कि उसका सपक्ष कुछ है नही, साध्य जहाँ जहाँ पाये जायें वह सपक्ष कहलाता है। और जिस स्थलमें साध्य घटाया जाय उसे पक्ष कहते हैं। तो इस अनुमानमें पक्ष तो है शब्द और साध्य है आकाशका विशेषगुण, तो आकाश विशेषगुण रूप साध्य यह और और जगह पाया जाय, ऐसा कोई सपक्ष ही नही है, तो सपक्षमें रहेगा ही क्या? इस प्रकार यह विरुद्ध हेतु पक्ष और विपक्षमें तो रहा और इस हेतुका सपक्ष है ही नही, क्योंकि आकाशमें शब्दसे तो अन्य कोई विशेष गुण नही है जिससे कि वह भी सपक्ष बन जाय। कोई यहाँ ऐसी शंका करे कि आकाशमें परम महापरिमाण गुण तो है अर्थात् आकाशका विस्तार आकार बहुत है तो परम महापरिमाण नामका गुण होनेसे सपक्ष मिल जाया करेगा। तो उत्तरमें कहते हैं कि परम महापरिमाण गुण तो अन्य पदार्थोंमें भी पाया जाता है। जैसे आत्माको भी परम महापरिमाण वाला विशेषवाद में माना है। तो परम महापरिमाण गुण साधारण गुण रह गया। आकाशका विशेष गुण तो नही कहलाया। आकाशके विशेषगुणका कोई सपक्ष नही मिल सकता है। तो इस तरह यह पक्षविपक्षव्यापक अविद्यमान सपक्ष हेतु बताया तो गया है लेकिन विरुद्ध हेत्वाभासका जो लक्षण किया गया है उस लक्षणसे यह भी लक्षित है इस कारण इसका भी विरुद्ध हेत्वाभासमें अन्तर्भाव होता है।

पक्षविपक्षैकदेशवृत्ति अविद्यमानसपक्ष नामक विरुद्ध भेदका विरुद्ध हेत्वाभासमें अन्तर्भाव—अब सपक्षके न होनेपर विरुद्ध होने वाला दूसरा भेद कहते

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं। पक्षविपक्षैकदेशवृत्ति अविद्यमान सपक्ष जैसे कि अनुमान बनाया गया कि ६ पदार्थ सत्ता सम्बधी हैं उत्पत्तिमान होनेसे तो यहाँ हेतु दिया गया है उत्पत्तिमत्व सो यह हेतु पक्षके एक देशमें रह रहा है पक्ष बनाये हैं ६ पदार्थ द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय। तो इन ६ पदार्थोंमेंसे जो अनित्य द्रव्य है, अनित्य गुण है अनित्य कर्म है उनमें ही यह हेतु घटित होगा जो नित्य द्रव्य आदिक हैं उनमें यह हेतु घटित न होगा। इस तरह यहाँ हेतु पक्षके एक देशमें रहा, साथ ही विपक्षके एक देशमें भी रहता है। यहाँ साध्य बताया गया है सत्ता सम्बंधी है अर्थात् जिसमें सत्ताका सम्बंध होता है ऐसा है तो सत्ता सम्बन्धीका विपक्ष हुआ यह जिसमें सत्ताका सम्बन्ध न हो वह विपक्ष कहलायेगा तो ऐसे विपक्ष हुए प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव। इनके सत्ताका सम्बन्ध नहीं है। ये अभावरूप हैं, तो विपक्ष कहलाये ये चार प्रकारके अभाव। सो इन विपक्षोंमेंसे कुछमें तो हेतु घटित होता है और कुछमें नहीं। हेतु है उत्पत्ति वाला होनेसे ? तो प्रध्वंसाभाव तो उत्पत्ति वाला है। जैसे घट रखा और डंडा मार दिया खपरियां बन गयी घटका प्रध्वंसाभाव होगया तो प्रध्वंसाभावकी उत्पत्ति हुई है, किन्तु प्रागभाव, अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभावकी तो उत्पत्ति नहीं होती है। तो उत्पत्ति वाला होनेसे यह हेतु विपक्षके एक देशमें घटित हुआ। सपक्ष तो इसका कोई है ही नही। सपक्ष उसे कहते हैं कि साध्य जहां जहां पाया जाय। यहां साध्य बनाया गया है सत्ता सम्बन्धी और पक्ष बना दिया है ६ पदार्थ। अब पक्षके अलावा और कौन सी चीज रह गयी जिसमें हम सत्ता सम्बन्धी यह साध्य घटित करें। सब कुछ तो ६ में कह डाला। तो समक्षका अभाव है इसलिए सपक्षमें इस हेतुकी वृत्ति नही है। इस तरह यह भी एक विरुद्ध भेद हुआ। लेकिन यह विरुद्ध हेत्वाभासके लक्षणसे ही लक्षित है, यह अलगसे कोई भेद नही है, इसका भी विरुद्ध हेत्वाभासमें अन्तर्भाव होता है।

पक्षव्यापक विपक्षैकदेशवृत्ति अविद्यमानसपक्षनामक विरुद्धभेदका विरुद्ध हेत्वाभासमें अन्तर्भाव—अब सपक्षके न होनेपर विरुद्ध नामका तीसरा भेद कहते हैं। पक्षव्यापक विपक्षैकदेशवृत्ति और अविद्यमान सपक्ष अर्थात् जो हेतु पक्ष में तो रहे और विपक्षके एक देशमें रहे, किन्तु जिसका सपक्ष विद्यमान ही न हो, इस भेदका उदाहरण एक यह है कि शब्द आकाशका विशेष गुण है, क्योंकि बाह्य इन्द्रिय के द्वारा ग्राह्य होनेसे. तो यहाँ हेतु है बाह्येन्द्रियग्राह्यत्व। वह हेतु पक्ष बनाये गये शब्दमें पाया जाता है इस कारण पक्षव्यापक है और विपक्षके एक देशमें ही रहता है, सो विपक्षैकदेशवृत्ति है। विपक्ष उसे कहते हैं जो स्थल साध्यके विपरीत हो। इस अनुमानमें साध्य बनाया गया है आकाशका विशेष गुण है। तो विपक्ष वह होगा जो आकाशका विशेष गुण नही है। तो आकाशका जो विशेषगुण नही, अन्य जितने भी गुण हैं उन सब गुणोंमें सबमें यह हेतु नही पाया जाता, किन्तु कुछमें पाया जाता कुछ में नही। जैसे रूप आदिकमें बाह्य इन्द्रियग्राह्यपना पाया जारहा है किन्तु सुख आदिक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में बाह्य इन्द्रियग्राह्यपना नही पाया जाता। रूप भी आकाशके विशेषगुणसे अलग है। इसलिए विपक्ष तो ये दोनों ही हैं, लेकिन बाह्य इन्द्रियग्राह्यपना हेतुरूप आदिकमें तो है और सुख आदिकमें नही है, तब हेतु रहा विपक्षके एक देशमें। और, यहाँपर सपक्ष कोई है ही नही, इस कारण सपक्षकी प्रवृत्ति वैसे ही सिद्ध है। सपक्ष उसे कहते हैं जो पक्षसे अतिरिक्त ऐसा स्थल हो जिसमें साध्य पाया जाता हो। साध्य बताया गया है आकाशका विशेष गुण। तो आकाशका विशेषगुण अन्यत्र कहीं पाया जाता हो ऐसा कुछ है ही नही, इस कारणसे इसका सपक्ष विद्यमान ही नही है। यों यह विरुद्ध भेद यद्यपि अनुमानको सिद्ध करनेमें असमर्थ है और इसी कारण दोषरूप है लेकिन विरुद्ध हेत्वाभासका जो लक्षण किया गया है उस लक्षणसे यह लक्षित है, उससे बहिर्भूत नही है इस कारण इसका भी अन्तर्भाव विरुद्ध हेत्वाभासमें हो जाता है।

पक्षैकदेशवृत्ति विपक्षव्यापक अविद्यमानसपक्ष नामक विरुद्धभेदका विरुद्ध हेत्वाभासमें अन्तर्भाव अब सपक्षके न होनेपर होने वाले विरुद्धभेदमें एक यह अन्तिम भेद है—पक्षैकदेशवृत्ति विपक्षव्यापक अविद्यमान सपक्ष अर्थात् जो हेतु पक्षके एक देशमें रहे और विपक्षमें रहे तथा जिसका सपक्ष कोई हो ही नहीं, जैसे कि अनुमान बनाया गया कि वचन और मन नित्य हैं कार्य होनेसे। तो इस अनुमानमें हेतु तो हुआ कार्यत्व, और पक्ष हुआ वचन और मन। साध्य हुआ नित्य। तो कार्यपना पक्षके एक देशमें रह रहा है अर्थात् वचन तो कार्य है किन्तु मन कार्य नहीं है। इस प्रकार यह हेतु पक्षके एक देश में रहा। और, विपक्ष हैं अनित्य घट आदिक जो साध्यसे याने नित्यसे विपरीत धर्म वाला हो वह सब विपक्ष कहलाया। यहां साध्य बनाया गया है नित्यका जो विपरीत हो, अनित्य हो वह सब विपक्ष है। तो विपक्ष जो नित्य घट आदिक हैं उन सबमें यह कार्यपना रह रहा है याने कार्यत्व हेतु समस्त विपक्षमें रहता है और सपक्षमें प्रवृत्ति है इस हेतुकी, क्योंकि इसका कोई सपक्ष ही नही है। पक्षके अतिरिक्त वे स्थल जिसमें साध्य रहता हो उन्हें सपक्ष माना गया यहां साध्य है नित्य सो नित्यमें अन्य किसीमें कार्यत्व पाया ही नहीं जाता तो इस तरह यह विरुद्धभेद दूषित है लेकिन इसका भी अन्तर्भाव विरुद्ध हेत्वाभासमें है। क्योंकि विरुद्ध हेत्वाभासमें जो लक्षण किया गया है उस लक्षणसे ही यह हेतु लक्षित है। इस प्रकार विरुद्ध हेत्वाभासका वर्णन समाप्त हुआ। अब अनेकान्तिक हेत्वाभास किस प्रकारसे होता है इसका वर्णन करते हैं।

विपक्षेऽप्यविरुद्धवृत्तिरनेकान्तः॥ ६–३० ॥

अनैकान्तिक हेत्वाभासका स्वरूप—विपक्षमें भी जिस हेतुकी वृत्ति अविरुद्ध है अर्थात् जो हेतु विपक्षमें भी चला जाता है उसे अनैकान्तिक हेत्वाभास कहते हैं इस सूत्रमें अपि शब्द देनेसे यह ध्वनित हुआ कि वह हेतु पक्ष और सपक्षमें तो रहता ही है पर केवल पक्ष और सपक्ष में ही रहकर विपक्षमें भी हेतु चला गया सो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उस हेतुको अनैकान्तिक हेत्वाभास कहते हैं। अनैकान्तिकका शब्दार्थ क्या है कि इसमें तीन शब्द पड़े हुए हैं न, एक, अन्त। न का समास होनेपर अ आदेश हो जाता है। तब इसका व्युत्पत्त्य अर्थ हुआ एक ही धर्ममें जो नियत हो उसे तो कहते हैं ऐकान्तिक और उससे जो विपरीत हो उसे कहते हैं अनैकान्तिक। अर्थात् सव्यभिचार याने व्यभिचार सहित जो हेतु होता है उसे अनैकान्तिक कहते हैं व्यभिचारका अर्थ क्या है? पक्ष और सपक्षसे अन्यमें रहनेको व्यभिचार कहते हैं। जो पक्ष और सपक्षमें रह कर भी पक्ष सपक्षसे अन्यत्र अर्थात् विपक्षमें भी रहता है उसे व्यभिचारी कहते हैं, ऐसी बात प्रसिद्ध है। जैसे कि कोई पुरुष अपने पक्षमें भी रह रहा है और सपक्षमें भी रह रहा है और विपक्षमें भी रहा करते हैं। जो अपने घरमें भी प्रेमसे रहता है। मित्रजनोंमें भी रहता है और शत्रुओंमें भी मिला रहता है याने जो कुटुम्बके और मित्रके शत्रु हैं उनमें भी मिला रहता है तो उस पुरुषको व्यभिचारी कहेंगे इसी प्रकार यह हेतु भी जो अनैकान्तिक रूपसे माना गया है उसे व्यभिचारी कहते हैं। यह अनैकान्तिक नामका हेत्वाभास दो प्रकारका है एक निश्चित वृत्ति रूप अनैकान्तिक हेत्वाभास दूसरा शंकित वृत्तिरूप अनैकान्तिक हेत्वाभास। उनमेंसे अब निश्चित वृत्ति नामक अनैकान्तिक हेत्वाभासका वर्णन करते हैं।

निश्चितवृत्तिर्यथाऽनित्यः शब्दः प्रमेयत्वात् घटवदिति ॥६–३१॥

निश्चितवृत्तिनामक अनैकान्तिक हेत्वाभास निश्चित वृत्ति नामका अनैकान्तिक हेत्वाभास उसे कहते हैं कि जिस हेतुकी वृत्ति विपक्षमें निश्चत है अर्थात् जो हेतु विपक्षमें अर्थात् साध्यसे विपरीत स्थलमें नियमसे रहा करे उस हेतुको निश्चित् वृत्ति अनैकान्तिक हेत्वाभास कहते हैं। उदाहरण इस प्रकार है। जैसे कि अनुमान बनाया गया कि शब्द अनित्य है प्रमेय होनेसे, घटकी तरह। जो जो प्रमेय होते हैं वे वे अनित्य होते हैं। जैसे कि घट। शब्द भी प्रमेय है इस कारण शब्द भी अनित्य होना चाहिए। इस प्रकारका एक अनुमान बनाया गया तो इस अनुमानमें जो प्रमेयत्व हेतु है वह निश्चितवृत्ति नामक अनैकान्तिक हेत्वाभास है। यह प्रमेयत्व हेतु निश्चित वृत्ति नामक अनैकान्तिक हेत्वाभास किस प्रकार है, इसका वर्णन करते हैं।

आकाशे नित्येऽप्यस्य संभवादिति ॥ ६–३२ ॥

निश्चितवृत्ति कुहेतुकी अनैकान्तिकहेत्वाभासताका कारण—निश्चित वृत्ति अनेकान्तिक हेत्वाभास उसे कहते हैं कि जो हेतु विपक्षमें नियमसे रहे। उक्त अनुमानमें हेतु दिया गया है प्रमेयत्व और साध्य बताया है अनित्य। और, अनित्यरूप साध्यसे विपरीत है नित्य पदार्थ जैसे कि आकाश, तो आकाश विपक्ष हुआ ऐसा नित्य आकाश विपक्षमें भी प्रमेयत्व हेतु रह रहा है। आकाश भी तो प्रमेय है, वह भी तो ज्ञानके द्वारा जाना जा रहा है। आगममें भी उसका बहुत वर्णन किया गया है औ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सभी लोग मानते हैं तो आकाश प्रमेय होनेपर भी अनित्य नही है । अनुमान यह बनाया गया था कि जो जो प्रमेय होते हैं वे सब अनित्य होते हैं लेकिन यहाँ व्यभिचार आ गया । आकाश प्रमेय होनेपर भी अनित्य नही माना गया है इस कारण यह निश्चित वृत्ति नामका अनेकान्तिक हेत्वाभास है । विशेषवादमें निश्चितरूपसे आकाश को नित्य माना है और प्रमेयपना इस आकाशमें निश्चितरूपसे रह रहा है, सन्देह भी नही है कि आकाश प्रमेय है या नही । तो निश्चितरूपसे विपक्षमें हेतुके रहनेके कारण इस हेतुको निश्चितवृत्ति नामका अनेकान्तिक हेत्वाभास कहा गया है । अब शंकितवृत्ति नामक द्वितीय अनेकान्तिक हेत्वाभासका वर्णन करते हैं ।

शंकितवृत्तिस्तु नास्ति सर्वज्ञो वक्तृत्वादिति ॥ ६–३३ ॥

शंकितवृत्ति नामक अनेकान्तिक हेत्वाभास—शंकितवृत्ति अनेकान्तिक हेत्वाभास उसे कहते हैं जो हेतु विपक्षमें शंकित रहे अर्थात् जिस हेतुका विपक्षमें संदेह पाया जाय । रहता है या नही रहता है ? कुछ शंकाके ढंगसे अथवा रह भी सकता है रहनेकी सम्भावनाके ढंगसे, यह शंकितवृत्ति नामक अनेकान्तिक हेत्वाभास होता है । इसका एक यह उदाहरण है कि अनुमान बनाया गया कि सर्वज्ञ नही है वक्ता होनेसे, जो जो वक्ता होता है वह सर्वज्ञ नही होता । इस प्रकारके अनुमानसे वक्तृत्व हेतुके द्वारा सर्वज्ञत्वका निषेध किया गया तो इसमें जो वक्तृत्व हेतु है वह शंकितवृत्ति नाम का अनेकान्तिक हेत्वाभास है । इस अनुमानमें वक्तृत्व हेतु शंकितवृत्ति नामका हेत्वाभास किस प्रकारसे है ? उसका वर्णन करते हैं ।

सर्वज्ञेन वक्तृत्वाविरोधात् ॥ ६–३४ ॥

शंकितवृत्तिरूप कुहेतुकी अनैकान्तिक रूपताका कारण—शंकितवृत्ति उसे कहते हैं कि जिस हेतुका विपक्षमें रहनेकी भी सम्भावता है उसे शंकित वृत्ति कहते हैं । जो उक्त अनुमानमें हेतु तो बताया है वक्तृत्व और साध्य कहा गया है सर्वज्ञ नही है । सर्वज्ञका प्रतिषेध साध्य कहा गया है । तो सर्वज्ञ अभावका विपरीत क्या हुआ ? सर्वज्ञका सद्भाव । तो जैसे वक्तृत्व हेतुका सर्वज्ञमें भी विरोध नही है । वक्ता भी हो और सर्वज्ञ भी हो । ये दोनों बातें सम्भव हैं । और इसका तो समर्थन सर्वज्ञ सिद्धिके प्रकरणमें बहुत विस्तारसे वर्णन किया है । जो सर्वज्ञ होता है वह रागपूर्वक, इच्छा पूर्वक तो वक्ता नहीं होता किन्तु जीवोंके पुण्योदयसे और उन सकल परमात्माके वचन योगके कारण सहज ही जैसे मेघ गर्जना करते हैं इसी प्रकार सकल परमात्माकी भी दिव्यध्वनि खिरती है । इस तरह वे वक्ता तो हो गए । लेकिन सर्वज्ञका अभाव उनमें नही है । तो वक्तृत्व हेतुका सर्वज्ञके सद्भावमें विरोध नहीं है इस कारण उक्त अनुमानमें दिया गया वक्तृत्व हेतु शंकित वृत्ति नामका अनैकान्तिक हेत्वाभास हो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाता है। यों निश्चितवृत्ति व शंकितवृत्ति नामके दो भेद अनैकान्तिक हेत्वाभासके किए गए।

विविध विपक्षवृत्तिवाले कुहेतुओंका अनैकान्तिक हेत्वाभासमें अंतर्भाव इस प्रसंगमें योग आदिक किन्हीं सिद्धान्तोंमें अनेक प्रकारके हेत्वाभास माने हैं। जैसे पक्ष त्रय व्यापक आदिक ८ प्रकारके अनैकान्तिक हेत्वाभास माने हैं, वे सब यहाँ कहे गए। अनैकान्तिकके लक्षणसे लक्षित हैं इस कारण इन दो प्रकारके अनैकान्तिक हेत्वाभासोंसे भिन्न नहीं हैं वे भेद अर्थात् उन सब अनैकान्तिक हेत्वाभासोंका इन अनेकान्तिक दो हेत्वाभासोंमें अन्तर्भाव हो जाता है। क्योंकि सब जगह विपक्षमें पूरे रूपसे अथवा एक देशरूपसे विपक्षमें रहनेके कारण विपक्षमें उनकी वृत्ति अविरुद्ध है। यह बात तो आ ही गई और अनैकान्तिक हेत्वाभासका लक्षण यह कहा गया है कि विपक्षमें अविरुद्ध वृत्ति हुआ रूप लक्षणमें सब भेद घटित होते हैं अतएव वे अन्य सिद्धान्तके द्वारा प्रतिपादित ८ प्रकारके हेत्वाभास इस अनैकान्तिक हेत्वाभासमें ही गर्भित हो जाते हैं। अब उदाहरणके रूपमें उन सबपर दृष्टिपात कीजिए।

पक्षत्रयव्यापककुहेतु का अनेकांतिक हेत्वाभासमें अंतर्भाव—यौगाभिमत अनैकान्तिकोंमें प्रथम हेतु बताया है पक्ष त्रय व्यापक याने जो पक्ष सपक्ष और विपक्ष तीनोंमें रहे ऐसे हेतुको हेत्वाभास कहा है। जिसका कि उदाहरण है—शब्द अनित्य है प्रमेय होनेसे। तो वहां प्रमेयत्व हेतु अर्थात् जाननेमें आ सकना यह स्पष्ट रूपसे शब्द में भो पाया जा रहा है। शब्द भी ज्ञेय बन रहा है और सपक्ष याने जो नित्य हैं, उन में भी प्रमेयत्व हेतु पाया जा रहा है। तो इस तरह पक्ष, सपक्ष, विपक्ष तीनोंमें हेतुके रहनेके कारण यह पक्षत्रय व्यापक नामका कुहेतु कहा गया है, लेकिन इसका अन्तर्भाव अनेकान्तिक हेत्वाभासमें हो जाता है क्योंकि अनेकान्तिक हेत्वाभासका भी यही लक्ष्य है कि जो पक्ष सपक्ष और विपक्ष तीनोंमें हेतु रहे उसे अनेकान्तिक हेत्वाभास कहते हैं। सो यही पक्ष इस पक्षत्रय व्यापक नामक कुहेतुमें अनेकान्तिकका लक्षण घटित हो जाता है।

सपक्षविपक्षैकदेशवृत्ति कुहेतुका अनेकान्तिक हेत्वाभासमें अन्तर्भाव—दूसरा मिथ्या हेतु बताया है सपक्षविपक्षैकदेशवृत्ति जो सपक्ष और विपक्षके एक देशमें रहे, उदाहरण दिया गया है कि जैसे शब्द नित्य है अमूर्त होनेसे, तो यहाँ अमूर्तत्व हेतु पक्ष बताये गए शब्दमें भी पूरेमें रहता है और सपक्षके एक देशमें रहता है। यहाँ जो जो नित्य हों वे वे सब सपक्ष कहलायेंगे। सो नित्य आकाशमें तो अमूर्तपना है, मगर नित्य परमाणु भी है उसमें अमूर्तपना नहीं है। तो कुछ नित्यमें हेतु गया कुछ नित्यमें अमूर्तत्व हेतु नहीं पाया गया इसी कारण यह हेतु सपक्षके एक देशमें रहा। विपक्ष हुआ नित्यसे विपरीत अनित्य। तो ऐसा अनित्य है सुख और घट आदिक।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो सुख आदिकमें तो हेतु घटित हो गया क्योंकि वह अमूर्तिक है, पर घट आदिकमें अमूर्तत्व हेतु नही पाया गया। यों यह हेतु विपक्षके एक देशमें रहा। इस तरह यह हेतु यद्यपि कुहेतु है लेकिन इसका अन्तर्भाव अनैकान्तिक हेत्वाभासमें हुआ, क्योंकि अनैकान्तिकका भी यही लक्षण है जो पक्ष सपक्ष और विपक्षमें रहे। चाहे एक देशमें रहे चाहे पूरे देशमें रहे।

पक्षसपक्षव्यापक विपक्षैकदेशवृत्तिका अनेकान्तिक हेत्वाभासमें अन्तर्भाव--तीसरा सदोष हेतु बताया गया है पक्षसपक्षव्यापक विपक्षैकदेशवृत्ति अर्थात् जो हेतु पक्ष और सपक्षमें रहे और विपक्षके एक देशमें भी रहे उसे कहते हैं पक्षसपक्षव्यापक विपक्षैकदेशवृत्ति। जैसे अनुमान बनाया कि यह गौ है सींगवाला होने से, तो यहाँ हेतु दिया गया है सींगवाला होनेसे। तो यह हेतु पक्षमें तो चला गया अर्थात् जिसको यह शब्दसे कहा था कि यह गौ है तो इदं शब्द द्वारा वाच्य जो पिंड है उस पिण्डमें विषाणित्व है अर्थात् सींग है तो यों पक्षमें हेतु व्यापक हो गया। और सपक्ष कौन है ? जितने और गौवें हैं जो प्रत्यक्षमें इदं शब्द द्वारा वाच्य जैसा कि पक्ष बनाया है उसे छोड़कर दुनियामें जितनी भी गायें हों वे सब सपक्ष कहलायेंगी। तो गोत्व धर्मसे युक्त समस्त व्यक्ति विशेषोंमें विषाणित्व पाया जाता है। अर्थात् सींग वाला यह हेतु जैसे पक्षमें पाया जा रहा है। इसी प्रकार सपक्षमें भी पाया जा रहा है। किन्तु साथ-ही साथ विपक्षके एक देशमें भी विषाणित्व पाया जाता है। विपक्ष कौन हुआ ? जो साध्यसे विपरीत हो याने जो गाय न हो, अगोरूप। चाहे और कुछ भी हो वे सब गौके विपक्ष हैं। तो उन विपक्षोंमेंसे भैंसे आदिकमें तो सींग पाये जाते हैं, पर मनुष्यादिकमें नही पाये जाते। तो यह हेतु विपक्षके एक देशमें गया। इस तरह यह हेतु, अनुमान दूषित है यह बात सही है लेकिन इस नामसे अलग हेत्वाभास नही कहा जा सकता. क्योंकि जो अनैकान्तिक हेत्वाभासका लक्षण है उस लक्षणसे यह भी लक्षित है अतः इसका अन्तर्भाव अनैकान्तिक हेत्वाभासमें हो जाता है।

पक्षविपक्षव्यापक सपक्षैकदेशवृत्तिका अनैकान्तिक हेत्वाभासमें अन्तर्भाव—चौथा अनैकान्तिक बताया है पक्षविपक्षव्यापक सपक्षैकदेशवृत्ति। अर्थात् जो हेतु पक्ष तथा विपक्षमें रहे और सपक्षके एक देशमें रहे जैसे कि अनुमान बनाया गया कि यह अगौ है याने गाय नही है गायके अतिरिक्त और कुछ है। विषाणी होनेसे, सींग वाला होनेसे। तो देखो ! यह हेतु जिसको पक्ष बनाया गया है अयं कहकर ऐसे अगौ पिण्डमें तो है अनुमान करने वालेने भैंसको देखा और उसको कह रहा है कि यह अगौ है क्योंकि सींग वाला होनेसे। तो सींग वाला यह हेतु 'यह' में तो पहुँच गया अर्थात् भैंसको लक्ष्य करके पक्ष बनाया, अनुमान बनाया सो उसमें तो यह हेतु पहुँच गया है, पर साथ ही साथ विपक्षमें भी पहुँच गया। यहाँ साध्य है अगौ अर्थात् गाय नही।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

गायके अतिरिक्त और कुछ। तो इस साध्यका विपरीत क्या हुआ ? गाय। तो देखो ! अगौका विपक्ष हुआ गौ व्यक्ति, सो समस्त गौ व्यक्तियोंमें विषाणित्व पाया जाता है, तो यह हेतु पक्षमें व्यापक है और विपक्षमें भी व्यापक है। तथा सपक्षके एक देशमें ही रह रहा है। सपक्ष क्या हुआ ? अगौका सपक्ष, जो जो गाय न हों वे वे सब सपक्ष हैं, जो सामने है—जैसे कि भैंसेका लक्ष्य करके अनुमान बनाया तो वह पिण्ड तो हुआ पक्ष और उसमें साध्य सिद्ध किया जा रहा है अगौ अर्थात् गाय नहीं है तो अगौका सपक्ष क्या हुआ ? जितने भी अगौ हैं, जो जो भी गायें नहीं हैं वे अब सपक्ष हैं। तो देखिये कि उन सब सपक्षोंमेंसे अर्थात् जो जो अगौरूप हैं उनमेंसे किसी ही अगौमें तो विषाणित्व पाया गया और शेष अंगोमें नहीं पाया गया। जैसे बकरी, मेढा, रोझ, ऐसे कुछ सपक्षोंमें तो सींग पाया गया लेकिन मनुष्य आदिकमें सींग नहीं पाये जाते तो यह हेतु हुवा पक्षविपक्ष व्यापक और सपक्षके एक देशमें रहने वाला, सो यह हेतु यद्यपि दूषित है लेकिन इसको अलग नामसे स्वीकार नहीं किया गया, क्योंकि इनमें जो सदोषता है वह अनैकान्तिक हेत्वाभासके लक्षणसे लक्षित है। अतः इसका भी अन्तर्भाव अनैकान्तिक हेत्वाभासमें हो जाता है।

पक्षत्रयैकदेशवृत्तिका अनैकान्तिक हेत्वाभासमें अन्तर्भाव— अब ५ वां अनैकान्तिक कहते हैं पक्षत्रयैकदेशवृत्तिः अर्थात् जो हेतु पक्ष सपक्ष विपक्ष तीनोंके एक देशमें रहे उसे कहते हैं पक्षत्रयैकदेशवृत्ति। जैसे कि अनुमान बनाया गया कि वचन और मन अनित्य हैं, अमूर्त होनेसे, तो यहां हेतु है अमूर्तत्व, सो यह अमूर्तत्व हेतु पक्ष एक देशमें, सपक्षके एक देशमें और विपक्षके भी एक देशमें रहता है। इस अनुमानमें पक्ष बनाया गया है वचन और मन। सो देखो ! अमूर्तपना वचनमें तो घट जाता है पर मनमें अमूर्तपना नहीं है। विशेषवादके सिद्धान्तमें वचनको आकाशका गुण माना है और आकाश है अमूर्त तो शब्द भी अमूर्त है। तो विशेषवादमें शब्द अमूर्त तो निकल आया लेकिन मन अमूर्त नहीं है। मनको अमूर्त माना गया है। तो यह अमूर्तत्व हेतु पक्षके एक देशमें गया और साथ ही देखिये ! अमूर्तत्व हेतु सपक्षके एक देशमें भी रहता है। साध्य यहाँ बताया गया है अनित्य। तो जो जो भी अनित्य हों वे वे सब सपक्ष कहलायेंगे। सो अनित्य सुख आदिक भी हैं। घट पट आदिक भी हैं। सो सुख आदिकमें तो अमूर्तपना है, किन्तु घट आदिकमें अमूर्तपना नहीं है। सपक्ष यद्यपि सारे अनित्य पदार्थ हैं, जो जो अनित्य हों वे सब सपक्ष कहलायेंगे। फिर भी अनित्य हैं सुख आदिक उनमें तो अमूर्तपना है और अनित्य है घट आदिक, उनमें अमूर्तपना नहीं है। तो यह अमूर्तत्व हेतु सपक्षके एक देशमें ही रहा, इसी प्रकार अमूर्तत्व हेतु विपक्ष के एक देशमें रहता है। हेतु यहाँ कहा गया है अनित्य और अनित्यका विपक्ष है नित्य सो देखो ! नित्य आकाश भी नित्य है, परमाणु भी नित्य है, लेकिन अमूर्तपना आकाश आदिकमें तो पाया गया किन्तु परमाणु आदिकमें अमूर्तपना नहीं है। सो वह अमूर्तत्व हेतु विपक्षके एक देशमें रहा। इस तरह पक्ष सपक्ष, विपक्ष तीनोंके एक देश

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में रहने वाला हेतु मिथ्या है। यों यद्यपि यह हेतु आभास है लेकिन इसका अलगसे नाम नहीं लिया जा सकता है, क्योंकि जो कुछ इस कुहेतुमें दोष आया है वह अनैकांतिक हेत्वाभासके लक्षणसे लक्षित है। इस कारण इसका भी अन्तर्भाव अनैकांतिक हेत्वाभास हो जाता है।

पक्षसपक्षैकदेशवृत्ति विपक्षव्यापकका अनैकान्तिक हेत्वाभासमें अन्तर्भाव— अब छठवां अनैकान्तिक बताया गया है—पक्षसपक्षैकदेशविपक्षमें व्यापक अर्थात् जो हेतु समस्त पूरे पक्षमें न रहे किन्तु पक्षके एक देशमें रहे याने हेतु समस्त पूरे पक्षमें न रहे किन्तु पक्षके एक देशमें रहे, किन्तु सपक्षोंमेंसे कुछ सपक्ष में न रहे कुछ मेंने रहेन रहे किन्तु विपक्षमें सबमें बराबर पूरे रूपमें रहे। ऐसा वह हेतु भी अनैकान्तिक है। जैसे कि अनुमान बनाया गया कि दिशा काल और मनमें द्रव्य है अमूर्त होनेसे। तो यहाँ हेतु कहा गया है अमूर्तत्व यह अमूर्तत्व हेतु पक्षके एक देशमें रह रहा। पक्ष हैं तीन, दिशा, काल, और मन। सो इनमेंसे अमूर्तपना दिशा और कालमें तो है, पर मन तो मूर्त नहीं माना गया है। तो यह अमूर्तत्व हेतु पूरे पक्षमें न रहा, पक्षके एक देशमें रहा, इसी प्रकार अमूर्तत्व हेतु सपक्षके एक देशमें रहता है। यहाँ साध्य है द्रव्य। तो जो जो द्रव्य हों वे वे सब सपक्ष हैं। आत्मा भी सपक्ष है घट पट आदिक भी सपक्ष हैं लेकिन अमूर्तत्व हेतु आत्मामें तो रहा और घट पट आदिकमें न रहा। तो सपक्ष जो द्रव्य हैं उनके एक देशमें यह हेतु रहा, सबमें न रह सका। और, यह हेतु विपक्षमें निरन्तर रहता है। विपक्ष उसे कहते हैं जो स्थल साध्यसे विपरीत धर्म वाला हो। इस अनुमानमें साध्य बताया गया है द्रव्य। तो जो जो द्रव्य न हों वे वे सब विपक्ष हैं गुण, कर्म सामान्य, विशेष, समवाय ये सब विपक्ष हैं। सो देख लीजिए कि मूर्तत्व हेतु सब विपक्षोंमें पाया जाता। गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय। ये सभी तो अमूर्त हैं। मूतपना कहते है उसे जिसमें यह इतना है ऐसा परिणमनका जोग जोड़ दिया जाय। पर गुणमें चूंकि वह निर्गुण है अतः गुण में यह इतना है इस प्रकारका परिमाण नहीं जोड़ा जा सकता है। तो देखो गुण आदिकमें सबमें अमूर्तपना मौजूद है, पर द्रव्यत्व साध्य नहीं है। रूप, रस, गंध, स्पर्श वाला तो द्रव्य ही माना गया है। द्रव्यको छोड़कर अन्य कोई पदार्थ रूपी होता ही नहीं है। तो यह अमूर्तत्व हेतु समस्त विपक्षोंमें चला गया है। इस तरह यह हेतु मिथ्या है। फिर भी यह अलगसे नही कहा जा सकता। इस हेतुमें जो कुछ भी दोष है वह अनैकान्तिक हेत्वाभासके लक्षणसे लक्षित है इस कारण इसका भी अन्तर्भाव अनैकान्तिक हेत्वाभासमें हो जाता है।

पक्षविपक्षैकदेशवृत्ति सपक्षव्यापकका अनैकांतिक हेत्वाभासमें अंतर्भाव अब ७ वां अनेकान्तिक है पक्ष विपक्षैकदेशवृत्ति सपक्षव्यापक अर्थात् जो हेतु पक्षके एक देशमें रहे। विपक्षके एक देशमें रहे किन्तु सपक्षमें सबमें व्यापक हो।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इसका दृष्टांत दिया गया है दिशा, काल और मन, ये अद्रव्य हैं, क्योंकि अमूर्त होनेसे। तो इस अनुमानमें हेतु दिया गया है अमूर्तत्व। सो अमूर्तपना दिशा, काल, मनमें सबमें नही पाया जाता। यहां पक्ष बनाया गया है दिशा, काल और मन। ये सब तो अमूर्त नही हैं। हेतु समस्त पक्षोंमें नही पाया जा रहा अमूर्तत्व नहीं है। हेतु समस्त पक्षोंमें नहीं पाया जा रहा अमूर्तत्व हेतु विशेषवादपरिकल्पित दिशा और कालमें तो है, किन्तु मनमें नहीं है। इसी प्रकार विपक्षके एक देशमें भी रह रहा है। विपक्ष क्या हुआ? द्रव्य। यहाँ साध्य बताया गया है अद्रव्य। जो अद्रव्य न हो, और जो द्रव्य हों वे अद्रव्यके विपरीत हुए अतः सभी द्रव्य विपक्ष कहलाये। तो विपक्षोंमें भी देख लो कि सब विपक्षोंमें अमूर्तपना नहीं पाया जाता। अमूर्त कुछ द्रव्य है। सभी द्रव्य अमूर्त नहीं हैं। हां अमूर्तत्व हेतु सपक्षमें सबमें व्यापक है। सपक्ष क्या कहलाये? समस्त अद्रव्य याने द्रव्य नहीं किन्तु गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय पदार्थ। क्योंकि इस अनुमानमें दिशा काल व मन यह पक्ष बनाया गया है सो उनको तो छोड़ दो पक्षके नातेसे, अद्रव्य होनेसे भी छूटते थे, सो जितने अद्रव्य हैं अर्थात् द्रव्य तो न हों और कुछ हों वे सपक्ष हैं, उन सबमें अमूर्तपना बराबर पाया जाता है। इसी प्रकार यह हेतु भी मिथ्या है सदोष है। फिर भी इसका प्रकार या नाम अलगसे नहीं कहा जायगा। इसका कारण यह है कि अनैकांतिक हेत्वाभासका जो लक्षण किया गया है वह लक्षण यहाँ भी घटित होता है। इससे इसका अन्तर्भाव अनैकांतिक हेत्वाभासमें ही कर लिया जाता है।

सपक्षविपक्षव्यापक पक्षैकदेशवृत्तिका अनैकान्तिक हेत्वाभासमें अन्तर्भाव — अब अन्तिम अनैकान्तिक है सपक्षविपक्षव्यापक पक्षैकदेशवृत्ति अर्थात् जो हेतु पूरे सपक्षमें रहे विपक्षमें रहे, किन्तु पक्षके एक देशमें ही रहे, इसका उदाहरण बताया गया है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश ये अनित्य होते हैं अगंधवान होनेसे, याने गंधरहित होनेसे। तो यहां हेतु दिया गया है अगंधवत्त्व याने गंधरहित होनेसे, तो यह हेतु पक्षके एक देशमें ही रह रहा है। यहाँ पक्ष बताये गए हैं ५—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। सो गंधरहितपना पृथ्वीमें कहाँ है? जलको भी गंधवान बताया है, तो अगंधवत्त्व हेतु समस्त पक्षोंमें नही रहा, पक्षके एक देशमें रहा और सपक्ष हैं जितने भी अनित्य पदार्थ हों वे सब, क्योंकि इस अनुमानमें साध्य बनाया गया है अनित्यको। तो जितने भी लोकमें अनित्य पदार्थ हैं पक्षको छोड़कर, वे सब सपक्षमें आते हैं। तो सभी सपक्षोंमें अगंधवत्त्व पाया जाता है। इन पाँचोंको छोड़कर जितने भी अनित्य हैं, गुण हैं, कर्म हैं उन सबमें अगंधवत्त्व हेतु पाया जाता है। इसी प्रकार विपक्षमें भी अगंधवत्त्व हेतु पाया जाता है। विपक्ष कौन हुआ? जो साध्यसे विपरीत धर्मवाला हो, साध्य यहाँ कहा गया है अनित्यको। तो जो जो अनित्य न हों वे सब विपक्ष कहलाते हैं—मायने नित्य पदार्थ। तो आत्मा आदिक जितने भी नित्य पदार्थ हैं उन सबमें अगंधवत्त्व पाया जाता है। इस प्रकार यह हेतु शुद्ध न होनेसे मिथ्या है

Version 1

फिर भी इसका अलगसे नाम नहीं कहा गया, क्योंकि अनेकान्तिक हेत्वाभासके लक्षण में यह भी सम्मिलित है अतएव इसका भी अन्तर्भाव अनेकान्तिक हेत्वाभासमें होजाता है। अब अकिञ्चित्कर हेत्वाभासका स्वरूप कहते हैं।

सिद्धे प्रत्यक्षादिबाधिते च साध्ये हेतुरकिञ्चित्करः ॥ ६–३५ ॥

अकिञ्चित्कर हेत्वाभासका वर्णन—साध्य सिद्ध हो अथवा प्रत्यक्षादिक प्रमाणसे बाधित हो फिर भी उस साध्यको सिद्ध करनेके लिए हेतु देना सो वह अकिञ्चित्कर हेत्वाभास कहलाता है। जब किसी अन्य प्रमाणसे साध्य सिद्ध है, स्पष्ट है, ऐसे समयमें उस साध्यको सिद्ध करनेके लिए अनुमान बनानेका श्रम व्यर्थ है, कारण वह सिद्ध साध्य नामका अकिञ्चित्कर हेत्वाभास कहलाता है और जब उस साध्यमें प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणसे बाधा आती हो उस सम्बन्धमें हेतु देना सो चूंकि वह हेतु कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है जबकि स्पष्ट बाधित है वह साध्य। तो जबर-दस्ती साध्य सिद्ध कैसे किया जा सकता है तो उस समय वह अकिञ्चित्कर नामका हेत्वाभास होता है। अब दोनों प्रकारके अकिंचित्कर हेत्वाभासोंमेंसे प्रथम अकिंचित्-कर हेत्वाभासका वर्णन कहते हैं

यथा श्रावणः शब्दः शब्दत्वादिति ॥६–३६॥

सिद्धसाध्य अकिञ्चित्कर हेत्वाभास—जैसे कि शब्द श्रवणेन्द्रियसे जाना गया है क्योंकि शब्द होनेसे। अब यहाँ शब्द श्रवण इन्द्रिय द्वारा जाने जाते हैं, यह सब लोगोंको प्रत्यक्ष स्पष्ट अनुभूत है। फिर भी उस सबका श्रावणत्व सिद्ध करनेके लिए शब्दत्व हेतु देना सो यह सिद्ध साध्य नामका अकिञ्चित्कर हेत्वाभास है। यह हेतु अपने साध्यको सिद्ध नहीं कर रहा। साध्यकी सिद्धि तो प्रत्यक्ष आदिक परिमाणसे ही प्रसिद्ध हैं और न यह हेतु किसी अन्य साध्यको सिद्ध कर रहा, क्योंकि अन्य साध्यकी सिद्धि करनेमें इस हेतुकी प्रवृत्ति ही नहीं है। तो यहाँ अकिञ्चित्कर हेत्वाभास कहलाता है। इसका सही कारण अब सूत्र रूपमें कह रहे हैं।

किञ्चिदकरणात् ॥६–३७॥

सिद्धसाध्य अकिञ्चित्कर हेत्वाभासकी सदोषताका कारण—जब साध्य प्रत्यक्षसे सिद्ध है फिर उसे सिद्ध करनेके लिए अनुमान बनाया, हेतु दिया तो वह हेतु कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है। तो सिद्धसाध्यमें यही दोष है कि वह हेतु अकिञ्चित्कर हो गया, उसने कुछ नहीं किया। जिसके साध्यको सिद्ध करनेके लिए हेतु दिया जा रहा है वह तो प्रत्यक्षसे ही सिद्ध है। अब दूसरा जो बाधित नामका अकिंचित्कर हेत्वाभास है उसका वर्णन करते हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अनुष्णोऽग्निर्द्रव्यत्वादित्यादौ यथा किञ्चित्कर्तुमशक्यत्वात् ॥ ६-३८ ॥

बाधित अकिञ्चत्कर हेत्वाभास--अग्नि ठंढी है द्रव्य होनेसे, ऐसा कोई अनुमान दे तो इस अनुमानमें यह हेतु बाधित है, प्रत्यक्षसे ही बाधित है, जो कोई कहता हो कि अग्नि ठंढी होती है द्रव्य होनेसे, तो उसके हाथपर अग्नि धर दो, उसे पता पड़ जायगी कि अग्नि ठंढी होती है कि नहीं. विशेष प्रमाण देनेकी जरूरत ही नही है। तो जो बात प्रत्यक्षसे ही बाधित है उसके लिए अनुमान देकर उससे विपरीत बात सिद्ध करना यह अकिंचित्कर हेत्वाभासकी बात है, वह कुछ भी करनेमें समर्थ नही है। शंकाकार कहता है कि यह बात तो पक्षाभासके प्रसंगमें ही कह दी गई थी कि प्रत्यक्षसे बाधित हो, अनुमानसे बाधित हो, आगमसे बाधित हो, लोकबाधित हो, स्ववचन बाधित हो, वह सब पक्षाभास कहलाता है। तो उससे ही अनुमान गलत हो गया। इस ही दोषसे इस अनुमानमें दूषितता आ गई, फिर अलगसे बाधित अकिंचित् कर नामका हेत्वाभास बताना बिल्कुल व्यर्थ है। ऐसी आशंका करके उसके समाधानमें अब सूत्र कहते हैं।

लक्षण एवासौ दोषो व्युत्पन्नप्रयोगस्य पक्षदोषेणैव दुष्टत्वात् ॥६-३९॥

बाधित अकिञ्चित्कर हेत्वाभासकी प्रयोगता यह जो बाधित नामका अकिञ्चित्कर हेत्वाभास कहा गया है सो यह लक्षणमें ही, अर्थात् लक्षणको बताने वाले शास्त्रमें ही अकिञ्चित्करत्व नामका दोष बताया है शिष्योंकी व्युत्पत्तिके लिये, पर व्युत्पन्न पुरुषोंको वादके समयके लिये यह दोष न कहा जायगा। वहां वादीको पक्षाभास दोषसे दूषित कहकर निवारित कर दिया जायगा क्योंकि व्युत्पन्न पुरुषोंके लिये इस प्रकारसे पक्षाभास नामके दोषसे ही दूषित कहकर बाधित कर दिया जायगा। पर इस प्रसंगमें जो अकिञ्चित्कर नामका हेत्वाभास अलग कहा है सो चूंकि एक लक्षणकी व्युत्पत्तिमें इसका भी क्रम आता था इस कारणसे बाधित नाम का अकिञ्चित्कर हेत्वाभास कहा है। अब इस समय दृष्टान्ताभासका प्रतिपादन करते हैं।

दृष्टान्ताभासकी द्विविधताका सोपपत्ति कथन—यहां तक पक्षाभास और हेत्वाभासके रूपमें अनुमानके दोष बताये हैं। अब दृष्टान्ताभासके रूपमें अनुमान का दोष कहेंगे।। दृष्टान्ताभास बतानेसे पहिले यह समझ लेना आवश्यक है कि दृष्टान्त होते हैं दो प्रकारके—एक अन्वय दृष्टान्त, दूसरा व्यतिरेक दृष्टान्त। अन्वय दृष्टान्तमें साधनके होनेपर साध्यका होना बताया जाता है और व्यतिरेक साध्यके अभावमें साधनका अभाव बताया जाता है। तो इस प्रकार अन्वय व्याप्ति और व्यतिरेक व्याप्तिके भेदसे दृष्टान्त भी दो प्रकारके हो गए। तब आभास भी दोनों प्रकार

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

के होंगे –अन्वय दृष्टान्ताभास और व्यतिरेक दृष्टान्ताभास उनमेंसे अब अन्वय दृष्टान्ताभासका वर्णन करते हैं।

दृष्टान्ताभासा अन्वये असिद्धसाध्यसाधनोभयाः ॥ ६–४० ॥

अन्वयदृष्टाातन्भास–दृष्टान्ताभास तीन प्रकारसे होते हैं कि असिद्ध साध्यका होना, असिद्ध साधनका होना और असिद्ध साध्य साधन दोनोंका होना – जिस दृष्टान्त में साध्य असिद्ध हो वह असिद्धसाध्य नामक दृष्टान्ताभास है। जिस दृष्टान्तमें साधन सिद्ध न हो रहा हो उसे असिद्ध साधन नामका अन्वय दृष्टान्ताभास कहते हैं और जिस अनुमानमें साध्य साधन दोनों ही सिद्ध न होते हों उसे असिद्धोभय अन्वय दृष्टान्ताभास कहते हैं। इस प्रकार अन्वय दृष्टान्ताभासमें तीन तरहकी बातें होती हैं। अब अन्वय दृष्टान्ताभासको ही दृष्टान्त द्वारा बताते हैं।

अपौरुषेयः शब्दोऽमूर्तत्वादिन्द्रियसुखपरमाणुघटवदिति ॥ ६–४१ ॥

अन्वयदृष्टान्ताभासका दृष्टान्तपूर्वक विवरण—शब्द अपौरुषेय है अमूर्त होनेसे इन्द्रिय सुखकी तरह, परमाणुकी तरह और घटकी तरह। यहाँ अनुमान दिया गया है कि शब्द अपौरुषेय होते हैं अमूर्त होनेसे और दृष्टान्त दिए गए हैं तीन इन्द्रिय सुख और परमाणु तथा घटका। इन्द्रिय सुखमें तो अपौरुषेय साध्य नहीं है, परमाणुमें अमूर्तत्व साधन नहीं है और घटमें अपौरुषेयरूप साध्य भी नहीं है और अमूर्तत्वरूप साधन भी नहीं है। इस प्रकार असिद्धसाध्य, असिद्धसाधन और असिद्धोभय तीनों प्रकारके दृष्टान्ताभासोंके तीन दृष्टान्त एक इस अनुमानमें आ जाते हैं। इन्द्रिय सुखमें अमूर्तत्व नामका साधन तो है पर अपौरुषेय नामका साध्य नहीं है क्योंकि इन्द्रिय सुख पौरुषेय होते हैं और परमाणुमें अपौरुषेयत्व साध्य तो है, पर अमूर्तत्व नामका साधन नहीं है, क्योंकि परमाणु मूर्तिक होते हैं, लेकिन घटमें दोनों ही नहीं हैं क्योकि घट पौरुषेय भी है और मूर्त भी है। सो क्रमसे तीन प्रकारके दृष्टान्ताभासके ये उदाहरण हैं। अन्वय दृष्टान्ताभास केवल असिद्ध साध्य, असिद्ध साधन और असिद्ध उभयसे ही नहीं होते, किन्तु अन्य प्रकारसे भी अन्वय दृष्टान्ताभास होता है, उस ही प्रकारका अब वर्णन करते हैं।

विपरीतान्वयश्च यदपौरुषेयं तदमूर्तकं ॥६–४२

विपरीतान्वयनामक अन्वय दृष्टांताभास – विपरीत अन्वय वाला दृष्टांत भी दृष्टांताभास कहलाता है। जैसे कि यह अनुमान कहा गया है कि शब्द अपौरुषेय है, अमूर्त होनेसे। तो इसमें व्याप्ति तो इसी तरह लगाना चाहिए था कि जो जो अमूर्त होते हैं वे वे अपौरुषेय होते हैं, किन्तु किसी कारणसे कुछ व्यामोह हो जाय, अज्ञान आ जाय, घबड़ाहट क्षोभ आ जाय और विपरीत व्याप्ति कह बैठे कि जो जो अपौरु-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

येय होते हैं वे वे अमूर्त होते हैं। तो ऐसी विपरीत व्याप्ति लगाकर दृष्टांतको कहनेसे वह विपरीतान्वय नामका दृष्टांताभास बन जाता है। और इस तरह तो विपरीत अन्वय लेनेपर जो अनुमान सही भी हों उनका भी दृष्टांताभास बन जाता है। जैसे एक प्रसिद्ध अनुमान है कि पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे अनुमान सही है, पर इस अनुमानको बढ़ाते बढ़ाते विपरीत अन्वय व्याप्ति कह बैठें कि जहां जहां अग्नि होती है वहां धूम होता है। तो ऐसा कहनेपर वह भी दृष्टांताभास बन बैठेगा, क्योंकि अन्वय व्याप्तिमें साधन दिखाकर साध्यके दिखानेकी व्याप्ति होती है। अन्वय दृष्टांत तो उस का बताया और व्याप्ति लगादी उल्टी, याने जहां जहां साध्य पाया जाता है वहां वहां साधन पाया जाता है। ऐसी विपरीत व्याप्ति करदे तो ऐसे विपरीतान्वयमें सर्वत्र विपरीतान्वय दृष्टांताभास बन जायगा। यह विपरीत अन्वय दृष्टांताभास क्यों होता है। इसमें क्या हानि है ? इस बातको अब अगले सूत्रमें कहते हैं—

विद्युदादिनाऽतिप्रसंगादिति ॥६-४३॥

विपरीतान्वयमें अन्वयदृष्टांताभासपना होनेका कारण— शब्द अपौरुषेय है अमूर्त होनेसे, ऐसा अनुमान उठाकर वहां विपरीत व्याप्ति लगाना कि जो जो अपौरुषेय होते हैं वे वे अमूर्त होते हैं, ऐसी व्याप्ति लगानेपर विद्युत आदिकके साथ दोष आता है। जो जो अपौरुषेय हैं क्या वे वे अमूर्त ही होते हैं। बिजली मेघ आदिक ये सब अपौरुषेय हैं लेकिन कहां हैं अमूर्त ? तो जो व्याप्ति बनायी गई है वह व्याप्ति सम्यक् नहीं रह पाती। इस कारणसे वह विपरीतान्वय नामका दृष्टान्ताभास बन जाता है। कितने ही पदार्थ हैं ऐसे जो अपौरुषेय हैं किन्तु अमूर्त नही हैं मूर्त हैं। वनमें फूल फूल रहे हैं, फल फल गए, हैं मेघ गर्जना हो गयी है, मेघ बन गए हैं, मेघ बरष रहे हैं आदि ऐसी बहुत सी बातें पुरुषयत्नके बिना होने वाली पायी जाती हैं तो क्या वे अमूर्त हो गए। तो विपरीत व्याप्तिमें दोष आता है इस कारणसे विपरीतान्वय लगाकर दृष्टान्त बताया जायगा तो वह विपरीतान्वय नामका दृष्टान्ताभास कहलायगा। अब अन्वयदृष्टान्ताभासका वर्णन करके व्यतिरेकदृष्टान्ताभासका वर्णन करेंगे जिस प्रकार अन्वय दृष्टान्ताभास तीन प्रकारोमें बताये गए थे उसी प्रकार व्यतिरेकमें भी दृष्टान्ताभास तीन प्रकारसे हुआ करते हैं। अर्थात् व्यतिरेक दृष्टान्ताभास तीन प्रकारोंमें मिलेंगे। उस हीका अब वर्णन करते हैं।

व्यतिरेके असिद्धतद्व्यतिरेकाः परमाणिवद्रियसुखा काशवत् ॥ ६-४४ ॥

व्यतिरेक दृष्टान्ताभासमें असिद्ध साध्य व्यतिरेक दृष्टान्ताभास— साध्य साधन और उभयका व्यतिरक जहां असिद्ध है वहांपर व्यतिरेक दृष्टान्ताभास होते हैं। जैसे अनुमान बनाया गया कि शब्द अपौरुषेय है अमूर्त होनेसे, ऐसा कहनेपर व्यतिरेक व्याप्ति तो यही होती है ना कि जो अपौरुषेय नही होता वह अमूर्त भी नही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होता। साध्यके अभावमें साधनका अभाव बतानेको व्यतिरेक व्याप्ति कहते हैं। तो इस अनुमानमें व्यतिरेक व्याप्ति लगानेके बाद उसके लिए दृष्टान्त दिया जाय कि जैसे परमाणु तथा इन्द्रिय सुख तथा आकाश। तो ये तीनों ही दृष्टान्त दृष्टान्ताभास हो जायेंगे। व्याप्ति बनायी गई है कि जो अपौरुषेय नही होता है वह अमूर्त भी नही होता। जैसे कि परमाणु। यहाँ परमाणु अपौरुषेय नही है यह तो है साध्य व्यतिरेक और अमूर्त नही है यह है साधन व्यतिरेका सो यहाँ परमाणु अमूर्त नही है, यह तो बात बन गई, पर अपौरुषेय नही है, यह बात नही बनतीपरमाणुवोसे अमूर्तपना हट गया तो भी अपौरुषेयपना नही हटता क्योंकि परमाणु अपौरुषेय है। यहाँ अपौरुषेय नही है, यह बात न जम सकी, क्योकि वह अपौरुषेय है। तो इसमें असिद्ध साध्य व्यतिरेक हुआ। यहाँ जितने दृष्टान्त दिए गए हैं चूंकि व्यतिरेक व्याप्तिमें दिये गये हैं इस कारण साध्य साधन उभयका अभाव बताना है तो परमाणु अपौरुषेय नही है यह बात तो नही बनी। परमाणु अपौरुषेय है, उसे कौन पुरुष उत्पन्न करता है ? अमूर्त नही है यह बात बन गयी, क्योंकि परमाणु मूर्त माना गया है तो इस दृष्टान्तमें साध्य व्यतिरेकका अभाव है। अतएव यह दृष्टान्त असिद्ध साध्य व्यतिरेकाभास है।

व्यतिरेकदृष्टान्ताभासमें असिद्धसाधन व्यतिरेक व असिद्धोभयव्यतिरेक दृष्टान्ताभास—दूसरा दृष्टान्त दिया गया है इन्द्रिय सुख। व्यतिरेक व्याप्ति कहती क्या है कि जो अपौरुषेय नही होता है वह अमूर्त नही होता है। तो इन्द्रियसुख अपौरुषेय नही है, यह बात तो बन गयी अर्थात् साध्य व्यतिरेकको तो सिद्धि हो गयी क्योंकि इन्द्रियसुख पुरुषोंके द्वारा उत्पन्न किया जाता है, लेकिन इन्द्रियसुख अमूर्त नही है यह बात न बनी, क्योंकि इन्द्रियसुख अमूर्त ही हुआ करते हैं। उसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श कहाँ है ? तो इस दूसरे दृष्टांतमें साधन व्यतिरेक असिद्ध है, इस कारण इन्द्रिय सुखका दृष्टान्त दिया गया है आकाशका। व्यतिरेक व्याप्ति बनायी गई है जो अपौरुषेय नही है, वह अमूर्त नही है जैसे कि आकाश आकाशमें न तो साध्य व्यतिरेक है और न साधन व्यतिरेक है, क्योंकि आकाश अपौरुषेय नही है, ऐसी बात नही है, अर्थात् अपौरुषेय है, आकाश अमूर्त नही है, यह बात नही है, क्योंकि आकाश अमूर्त है। तो जब आकाशमें साध्य भी न हटा, साधन भी न हटा, तो यह कहलाया असिद्धोभय व्यतिरेक दृष्टान्ताभास इस प्रकार व्यतिरेकमें दृष्टन्ताभास तीन प्रकारसे हुआ करते हैं। अब कहते हैं कि व्यतिरेकमें दृष्टान्ताभास हुआ इससे इतना ही दृष्टान्ताभास कहलाये सो नहीं, किन्तु विपरीत व्यतिरेक व्याप्ति लगा हो तो भी व्यतिरेक दृष्टान्ताभास कहलाता है। इसी बातको अगले सूत्रमें कहते हैं।

विपरीतव्यतिरेकश्च यन्नामूर्तं तन्नापौरुषेयम् ॥ ६–४५ ॥

विपरीतव्यतिरेक नामक व्यतिरेक दृष्टान्ताभास—जिसमें विपरीत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

व्यतिरेक दिखाया जाय, उल्टी व्यावृत्ति प्रदर्शित की जाय वह व्यतिरेक दृष्टान्ताभास कहलाता है। व्याप्ति जब भी दी जाती है तो दृष्टान्त उपस्थित करनेके लिए दी जाती है। व्याप्ति बोल करके आगे दृष्टान्तका बोलना एक नियमा पन्न हो जाता है, ऐसा ही व्यवहार है। तो जिस अनुमानमें व्यतिरेक व्याप्ति उल्टी लगा दी जाय तो उसमें जो दृष्टान्त दिया गया है वह व्यतिरेक दृष्टान्ताभास होगा। व्याप्तिके विपरीत करनेसे ही दृष्टान्ताभास बन जाता है, क्योंकि व्याप्ति बनानेके बाद दृष्टान्तका उसमें आना आवश्यक हो जाता है। तो जैसे यह अनुमान बनाया गया था कि शब्द अपौरुषेय है अमूर्त होनेसे, तो वहाँ व्यतिरेक तो ऐसा ही प्रदर्शन करना चाहिए कि जो अपौरुषेय नही होता है, वह अमूर्त नही होता है। साध्यका व्यतिरेक दिखाकर साधनका व्यतिरेक दिखाना व्यतिरेक व्याप्तिमें न्यायकी बात है क्योंकि साध्य व्यतिरेक दिखाकर साधनका व्यतिरेक दिखाया, तो इसमें ही अविनाभाव लक्षण बनता है। लेकिन, अज्ञानवश अथवा घबड़ाहटसे या व्याकुलित हो जानेसे यदि व्यतिरेक व्याप्ति उल्टी बनाकर बोले कि जो अमूर्त नही होता है वह अपौरुषेय नही होता है। तो यह व्याप्ति बिल्कुल गलत हो गयी। जो अमूर्त नही है वह अपौरुषेय नही है, क्या यह नियम सत्य है ? गलत है देखिये मेघ विद्युत आदिक अमूर्त नही है, मूर्त हैं तो क्या वे अपौरुषेय नही हैं, ऐसी बात है, जिनमें कुछ पौरुषेय हैं, कुछ अपौरुषेय हैं, तो यह व्याप्ति सर्वत्र तो न बन सकी, इस कारण विपरीत व्यतिरेक अगर बोल दिया जाय तो वह अशुद्ध हो जाता है। जैसे प्रसिद्ध अनुमान है कि पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे। अब इसकी व्यतिरेक व्याप्ति तो इस तरह लगती है कि जहाँ अग्नि नही होती है वहाँ धूम भी नही होता है। लेकिन कोई ऐसी व्याप्ति लगा बैठे कि जहाँ धूम नही होता है वहाँ अग्नि भी नही होती है तो इसमें दोष आता है। अनेक जगह ऐसा भी पाया जाता है कि जहाँ धूम होता ही नही है और अग्नि है। जब कोयला पूरा जलने लगता है, अपने तावपर रहता है अथवा जलकर तावके नीचे गिरने लगता है वहाँ धूम कहाँ पाया जाता है और अग्नि है तो उल्टी व्यतिरेक व्याप्ति सही नही हुआ करती। तो विपरीत व्यतिरेक व्याप्ति बोलकर दृष्टान्त कहना सो व्यतिरेक दृष्टान्ताभास कहलाता है।

पक्षाभास, हेत्वाभास व दृष्टान्ताभासके वर्णनके अनंतर वाजप्रयोगाभासके वर्णनकी सूचना—इस प्रकार प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण इन तीनके सम्बन्धमें आभासोंका वर्णन किया है। प्रतिज्ञा और हेतु इन दोके आभासोंका वर्णन किए बिना दृष्टान्ताभासका वर्णन नही हो सकता था, क्योंकि दृष्टान्त प्रतिज्ञा और हेतुके उपन्यास करनेके बाद ही ज्ञात होता है अथवा व्याप्ति बनायी जाती है। इस कारण सर्वप्रथम प्रतिज्ञाभासका वर्णन किया है। चाहे प्रतिज्ञाभास कहो अथवा पक्षाभास कहो दोनोंका एक ही अर्थ है। पक्षाभासके वर्णनके बाद फिर हेत्वाभासोंका वर्णन किया है। अब प्रतिज्ञा और हेतुके सम्बन्धमें यथार्थता और अयथार्थतासे प्रयोगकी बात बनती है तब उसपर व्याप्ति लगती है। तो व्याप्ताभास कहो, दृष्टान्ताभास कहो, इसके वर्णन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

से पहिले पक्षाभास और हेत्वाभासका वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् दृष्टान्ताभास बताया गया है जो कि ८ प्रकारके हुए हैं। असिद्धसाध्य अन्वय दृष्टान्ताभास, असिद्ध साधन अन्वय दृष्टान्ताभास, असिद्धोभयदृष्टान्ताभास, विपरीतान्वय दृष्टांताभास, ये चार तो अन्वय दृष्टान्ताभास सम्बन्धी विकल्प हैं और चार व्यतिरेक संबंधी विकल्प हैं। असिद्धसाध्य व्यतिरेक दृष्टान्ताभास, असिद्धसाधन व्यतिरेक दृष्टान्ताभास असिद्धोभयदृष्टान्ताभास तथा विपरीतव्यतिरेक दृष्टान्ताभास। यों दृष्टान्ताभासका वर्णन करनेके बाद बालप्रयोगाभासका वर्णन करेंगे। अव्युत्पन्न पुरुषोंको व्युत्पन्न करनेके लिये, समझानेके लिये पहिले जो ५ अवयवोंका प्रयोग किया गया था, प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन उन ५ अवयवोंके मुकाबलेमें जिन्हें बालप्रयोग नामसे कहा गया था, अब उनका आभास बतानेके लिए सूत्र कहते हैं।

बालप्रयोगाभासः पञ्चावयवेषु कियद्धीनता ॥ ६–४६ ॥

अनुमानके पञ्च अवयवोंमें कियद्धीनतारूप बालप्रयोगाभास—पाँच अवयवोंमें कुछ हीनता रह जानेको बालप्रयोगाभास कहते हैं। अनुमानके अंग ५ बताये गए हैं प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन। जैसे कि अनुमान बनाया गया कि इस पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे। जहां जहां धूम होता है वहाँ वहां अग्नि होती है। जैसे कि रसोईघर। और, इस पर्वतमें धूम है इस कारण अग्नि होना चाहिए। इस तरह इसमें ५ अग आ गएं हैं यह पर्वत अग्नि वाला है, यह तो हुई प्रतिज्ञा धूम वाला होनेसे, यह हुआ हेतु। जो जो धूमवान होता है वह वह अग्निवान होता है, जैसे रसोईघर, यह हुआ उदाहरण। और, यह पर्वत धूमवान है, यह हुआ उपनाया इस कारण अग्निमान होना चाहिए यह हुआ निगमन। अब इन ५ अंगोंमें से यदि कोई कम अंगोंका प्रयोग करे तो वह बालप्रयोगाभास है। यद्यपि वाद विवादके समय या व्युत्पन्न पुरुषोंसे वार्ता करते समय अनुमानके ५ अंगोंकी जरूरत नहीं है। वहां तो केवल प्रतिज्ञा और हेतु चाहिए किन्तु अव्युत्पन्नोंको समझानेके लिए, बालकोंको समझानेके लिये अनुमानके ५ अंगोंका प्रयोग किया जाता है इसी कारण इनका नाम बालप्रयोग कहा गया है। यदि उन अवयवोंमेंसे कुछ हीन रह जाता प्रयोग करते समय तो उसे बालप्रयोगाभास कहते हैं। अब बालप्रयोगाभास का एक उदाहरण देरहे हैं।

यथाग्निमानयं देशो धूमवत्वात्, यदित्थं तदित्थं यथा महानस इति ॥६–४७॥

दो अङ्गोंसे हीन बालप्रयोगाभासका उदाहरण—जैसे कोई अनुमान प्रयोग करे कि यह स्थान अग्निमान है धूमवान होनेसे। जो जो धूमवान होता है वह अग्निमान होता है। जैसे रसोईघर। इतना ही कहकर रह जाय तो इसमें उपनय नहीं आया और निगमन नहीं आया और सुननेमें भी कुछ बेतुकी सी बात लग रही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। केवल प्रतिज्ञा और हेतु ही कहा जाता, वह तो असम्बद्ध नहीं जचता। जैसे कि कोई कहे यह स्थान अग्नि वाला है धूम वाला होनेसे। बात इसमें पूरी आ चुकी है, किन्तु जब प्रतिपादनका सम्बोधनका उद्देश्य लेकर और आगे बढ़ते हैं तब तो पूरे ५ अवयवोंका प्रयोग हो तब तो बात सही रहती है और यदि उसमें कुछ हीन हो जाय तो वह आभास हो जाता है। इस उदाहरणमें प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण इन तीनका प्रयोग किया गया है। उपनय और निगमनका इसमें कोई वर्णन नहीं है इस कारण से यह प्रयोग वाला प्रयोगाभास हो जाता है। जो पुरुष अव्युत्पन्न बुद्धि वाले हैं, जिन की बुद्धि तीक्ष्ण नहीं है, सो अनुमान प्रयोगमें जो ५ अंग बताये गए हैं उनका जिसे संकेत मालूम है, जो गृहीत संकेत है वह पुरुष उपनय निगमनसे रहित इस अनुमान प्रयोगको प्रयोगाभास मानता है। यदि इसके साथ उपनय भी जोड़ दिया जाय। निगमन भी लगा दिया जाय तो यह बालप्रयोग पूर्ण सही बन जायगा। और, जब यह रूप बनेगा कि यह देश अग्निवान है धूमवान होनेसे। जो धूमवान होता है, वह अग्निमान होता है जैसे रसोईघर और यह स्थान धूमवान है, इतना ही कहकर रुक जाय तो सुनने वाला स्पष्ट समझ रहा है कि यह अभी सम्बन्धसे पूर्ण नहीं हुआ है, असम्बन्धित है। इसमें हुआ क्या ? प्रतिज्ञा, हेतु उदाहरण और उपनय इन चार अंगोंका प्रयोग हुआ है। इसमें निगमन अङ्गका प्रयोग हुआ है। इसमें निगमन अङ्गका प्रयोग नहीं हुआ है। तो नियमनरहित जो यह अनुमान बनाया गया सो बालप्रयोगाभास है। बालप्रयोगाभासका यहां स्पष्ट अर्थ यह निकला कि ५ अंगोंमेंसे यदि ४ अथवा ३ अङ्ग कोई बोले तो वह बालप्रयोगाभास है और कोई दो अङ्ग बोले तो उसे भी कह सकते हैं कि बालप्रयोगाभास है। किन्तु केवल दो अङ्गोंका प्रयोग व्युत्पन्न पुरुषोंके लिये यथार्थ माना गया है। सो वह बालप्रयोग बन जायगा पर बालप्रयोगकी दृष्टिसे तो ५ अङ्गोंमेंसे कुछ कम रह जाय तो वह बालप्रयोगाभास है। और, केवल अङ्ग ही कम रह जाय सो बालप्रयोगाभास है। इतनी ही बात नहो, किन्तु उन अवयवोंका यदि उल्टा प्रयोग कोई कर बैठे तो वह भी बाल प्रयोगाभास है। इसी बातको सूत्रमें कहते हैं।

तस्मादग्निमान् धूमवांश्चायमिति ॥६-४६॥

अङ्गविपरीतप्रयोगरूप बालप्रयोगाभास – कोई अनुमान बनाये कि यह पर्वत अग्नि वाला है जो धूमवाला होता है वह अ अग्नि वाला होता है, जैसे रसोईघर इसकारण अग्नि वाला है और यह पर्वत धूमवान है तो इसको सुनने वाला स्पष्ट समझ रहे होंगे कि यह उल्टा प्रयोग है और, इसमें कोई बात निष्कर्षपल्ले नहीं पड़ी है। ऐसा प्रयोयग इस कारण अग्नि वाला है और यह धूमवानहै " यह कितना असंगत असम्बद्ध प्रयोग है सम्बन्ध प्रयोग यह है कि और यह भी धूमवान है इस कारण अग्नि वाला होना चाहिए। इसके विपरीत रूपको लें तो वह बालप्रयोगाभास है क्योंकि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बालक, अव्युत्पन्न लोग अथवा पंच अवयवोंको ही अनुमान मानने वाले लोग उपनय-पूर्वक निगमनका प्रयोग हो तो उसको साध्यके ज्ञानका अङ्ग मानते हैं। अन्यथा नहीं। यदि पहिले निगमनका प्रयोग हो, फिर उपनयका प्रयोग हो तो वह साध्यकी प्रतिपत्तिका अङ्ग नहीं है इस कारण प्रयोगका उल्टा उच्चारण करना भी बाल प्रयोगाभास है। यहां जिज्ञासा हुई है कि उपनय और निगमनका विपरीत प्रयोग करनेपर वह आभास क्यों कहलाता है ? उसके उत्तरमें कहते हैं—

स्पष्टतया प्रकृतप्रतिपत्तेरयोगात् ॥६–५०॥

अवयवोंके विपरीत प्रयोगकी प्रयोगाभासता होनेका कारण - उल्टे प्रयोगमें अर्थात् निगमनपूर्वक उपनयके कहनेमें स्पष्टरूपसे प्रकृतवादका ज्ञान नहीं हो सकता है। जैसे पर्वतमें अग्नि सिद्ध करना था धुवाँ देखकर और वहाँ अनुमानके कुछ अङ्ग बोलकर जैसे कि यह पर्वत अग्नि वाला है, धूम वाला होनेसे। जो जो धूम वाला होता है वह अग्नि वाला होता है। जैसे रसोईघर। इस कारण यह पर्वत अग्नि वाला है और यह धूम वाला है यह अन्तिम उपनय निगमनका विपरीत प्रयोग कर दिया तो कितनी बेतुकी बात रही। कुछ प्रतिपत्ति ही नहीं हो सकती प्रयोग करना चाहिये था यों कि और यह पर्वत भी धूम वाला है इस कारण अग्नि वाला होना चाहिये। तो उपनय पूर्वक निगमन बोल दिया जाय तो उससे स्पष्ट प्रकृतके साध्यकी प्रतिपत्ति होती है और उल्टा बोलनेपर साध्यका ज्ञान नहीं हो पाता है। जो पुरुष जिस ही प्रकारसे गृहीत संकेत है, जिसने जिस विधिसे संकेत ग्रहण किया है वह तो उस ही प्रकारके वचन प्रयोगसे प्रकृत अर्थको जानता है, अन्य प्रकार नहीं। परन्तु, जो सर्व प्रकारसे वचन प्रयोगसे व्युत्पन्न बुद्धि वाला है वे तो जैसे भी वचन प्रयुक्त होते हैं उसीसे प्रकृत अर्थको जान लेते हैं। जैसे कि लोकमें जो सर्व भाषाओंमें प्रवीण पुरुष है वह तो जिस प्रकारसे भी कोई बोले उसको समझ जाता है, लेकिन जो अव्युत्पन्न जन है, बालक हैं उनको जब अनुमान प्रयोग किया जा रहा है तो जिस विधिसे होना चाहिए उस विधिसे ही बोलनेपर वे समझ सकेंगे। तो उपनयपूर्वक निगमन बोला जाय तो उससे तो प्रकृतकी प्रतिपत्ति सही होती है। और उल्टा बोलनेपर स्पष्ट रूपसे प्रकृत साध्यकी प्रतिपत्ति नहीं होती है, इस कारण उल्टा प्रयोग भी बालप्रयोगाभास कहलाता है। हां जो बालक नहीं हैं, बुद्धिमान हैं उनको कम अङ्गका भी प्रयोग हो, उल्टा सीधा भी हो तो वह सब समझ सकता है। उन प्रवीण पुरुषोंके लिये कुछ भी प्रयोगाभास नहीं है। जरासे संकेतसे ही वह सब विषय समझ लेता है। यहाँ तक अनुमानके मुकाबलेमें अनुमानाभासका वर्णन किया गया और अनुमानाभास कुछ अलगसे तो बताया नहीं जा सकता था। क्योंकि अनुमान कोई एक अवयव नहीं। ज्ञान तो यद्यपि एक है, पर उसकी जो क्रिया है वह कुछ अङ्गोंपूर्वक होती है इस कारण पक्षाभास, हेत्वाभास, दृष्टान्ताभास और बालप्रयो-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गाभासके वर्णनके द्वारा अनुमानाभासका वर्णन किया। अब इस समय आगमाभास का प्ररूपण करनेके लिए कहते हैं—

रागद्वेषमोहाक्रान्तपुरुषवचनाज्जातमागमाभासम् ॥६–५१॥

आगमाभास—आगमका लक्षण बताया गया था कि आप्तके कथन आदिकके कारणसे उत्पन्न हुए अर्थज्ञानको आगम कहते हैं। आप्त वह कहलाता है जो वीतराग हो और सर्वज्ञ हो। यदि वीतराग हो, सर्वज्ञ न हो तो भी उसका वचन प्रमाणरूप न होगा। हालाँकि ऐसा होता नहीं है कि कोई पुरुष सर्वज्ञ हो और वीतराग न हो, क्योंकि वीतराग होनेके ही अनन्तर कोई पुरुष सर्वज्ञ हो सकता है। तो जो रागद्वेष मोहसे रहित है ऐसा जो आप्त पुरुष है, उसके वचनसे जो अर्थज्ञान उत्पन्न हुआ उसका नाम है आगम। और आगमाभास, राग-द्वेष-मोहसे आक्रान्त पुरुषके वचनसे उत्पन्न हुआ जो बोध है वह आगमाभास है, इसके उदाहरणमें कहते है।

यथा नद्यास्तीरे मोदकराशयः सन्ति धावत्वं माणवकाः ॥ ६–५२ ॥

राग व द्वेषसे आक्रान्त पुरुषके वचनसे आगमाभासका उदाहरण—जैसे किसी कार्यमें व्यासक्त चित्त वाला याने जो किसी कार्यमें लग रहा है, जिसे कुछ आराम अवकाश नहीं है उस पुरुषको कुछ बच्चे लोग आकर तंग करें, शोर मचायें तो वह रागी पुरुष जिसको कि अपने किसी काममें राग है और इसमें बाधा आनेके कारण उन बच्चोंसे द्वेष हो गया तो बालकोंसे संत्रस्त होता हुआ वह पुरुष यह सोचकर कि मेरी जगहसे ये टल जांय, इस अभिलाषासे इस प्रकारका वाक्य कह देता है कि ऐ बालको ! देखो, उस नदीके किनारे लड्डुवोंकी राशि रखी है दौड़ जावो और खूब खावो। इस प्रकारके राग अथवा द्वेषके वश होकर ये जो वचन बोले गए हैं ये आगमाभास हैं। रागसे आक्रान्त हुआ प्राणी क्रीड़ाके वशीभूत होकर विनोदके लिए किसी वस्तुको न पाता हुआ जिससे कि दिल बहले, तो बच्चोंके साथ ही क्रीड़ाकी अभिलाषा से उनके साथ विनोद करनेके भावसे इस तरहका कोई वाक्य बोल देता है कि अरे बच्चों देखो उस नदीके किनारे लड्डुवोंकी राशि रखी है, दौड़ जावो और खावो। तो राग अथवा द्वेषके वश होकर जो इस प्रकारके वाक्यका उच्चारण करता है तो उस पुरुषका यह वचन आगमाभास कहलाता है। इसमें रागवश वचन कहलाये। तथा जब कोई इस इच्छासे कि उन बच्चोंके साथ विनोद करना है, हास्य करना है, इस भावको लेकर इन शब्दोंको यदि कहता है तो वह है रागका वचन कहलाया और इसी वचनको इस आशयसे कि हम तो काममें लगे हुए हैं और ये बच्चे शोर-गुल मचा रहे हैं। इन बच्चोको यहाँसे किसी तरहसे टालें। भगानेपर तो जाते न थे। तो यों कह दिया कि नदीके किनारे लड्डुयोंकी राशि है। दौड़ो बच्चो। तो इन दोनों ही वाक्योंमें कहा गया यह वाक्य आगमाभास है। अब मोहसे आक्रान्त होकर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कैसे वचन होते हैं उसका उदाहरण सूत्रमें कहते हैं ।

अंगुल्यग्रे हस्तियूथशतमास्ते ॥६-५३॥

मोहाक्रान्त पुरुषके वचनसे उत्पन्न आगमाभासका उदाहरण—मोहसे आक्रान्त होकर कोई दार्शनिक यों कहता है कि अगुलीके अग्रभागपर १० हाथी बैठे हैं यह बात न तो विनोदकी है और न डालनेकी है, किन्तु अज्ञानके वश होकर कहा हुआ सिद्धान्त है । जो अज्ञानसे आक्रान्त हो जाता है वह पुरुष वस्तुका यथार्थ विवेचन करनेके लिए समर्थ नहीं हो सकता सांख्य सिद्धान्तमें बताया गया है कि सब चीजें, सब समय, सब जगह मौजूद रहती हैं । यह एक सिद्धान्त है । आविर्भाव तिरोभावका सिद्धान्त यहीसे तो निकाला गया है । कोई वस्तु नवीन उत्पन्न नहीं होती और न मिटती है । सब चीजें सदा काल सब जगह बराबर रहती हैं । लेकिन कभी कोई चीज प्रकट होती है तो उसे लोग देखने लगते हैं । कभी कोई चीज तिरोभूत रहती है तो उसे लोग नही देख पाते हैं । तो इस सिद्धान्तमें यह माना गया कि सब जगह सब समय सब कुछ मौजूद है । तो लो अंगुलीके ऊपर १०० हस्तियूथ (हाथियों का झुण्ड) मौजूद हैं । इसका कैसे विरोध किया जायगा ? कोई कहे कि कहां है अगुलीपर हाथियोंका १०० झुण्ड यहाँ तो एक मक्खी भी नहीं हैं । तो उसे कहा जा सकेगा कि तुम समझते नहीं हो । यह सिद्धान्त है कि सब जगह सब समय सब कुछ चीजें उपस्थित रहा करती हैं । कोई यहां पूछता है कि इस प्रकारके पुरुषके वचनसे उत्पन्न हुआ ज्ञान कि अंगुलीके अग्रभागपर १०० हाथियोंके झुण्ड बैठे हैं ऐसा ज्ञान आगमाभास क्यों कहलाता है ? तो उसके उत्तरमें सूत्र कहते हैं ।

विसंवादात् ॥६-५४॥

रागद्वेषमोहाक्रान्तपुरुषवचनसे उत्पन्न बोधमें आगमाभासता होनेका कारण—रागसे आक्रान्त पुरुषके वचनसे उत्पन्न हुआ ज्ञान आगमाभास है, द्वेषसे आक्रान्त पुरुषके वचनसे उत्पन्न हुआ ज्ञान आगमाभास है और मोहसे भी आक्रान्त पुरुषके वचनसे उत्पन्न हुआ ज्ञान आगमाभास है, क्योंकि उन सब आगमाभासोंमें विसम्वाद पाया जाता है । विसम्वाद कहते हैं यथावत् स्वरूपके ज्ञानसे विचलित होना सो विसम्वाद है और वह विसम्वाद तब ज्ञात होता है जब विपरीत अर्थको बताने वाला प्रमाण आता है । जो बात सही नहीं है उसके सम्बन्धमें जब उक्तियाँ युक्तियाँ चलायी जाती हैं तो उसमें विवाद उत्पन्न होता है । जैसे रागाक्रान्त पुरुष जिसको कि मनो विनोदके लिए क्रीड़ाके वश होकर जब कोई चीज मिले ना तो बच्चोंसे ही मजाक किया कि नदीके तीर पर लड्डुवोंकी राशि है, जावो और खूब खावो । तो इसका प्रभाव क्या पड़ेगा ? एक बार मानलो लड़के चले गए । न मिले लड्डू । आकार विसम्वाद करेंगे, तो यह विवाद वाली बात है । और आत्महितसे इसका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रंच भी सम्बन्ध नहीं है। न कोई आत्महितकी पात्रतासे सम्बन्धित है यह वचन तथा मिथ्या भी है इसी कारण ये सब आगमाभास हैं। बच्चोंने सताया, उसका चित्त तो किसी कार्यमें था, वह अपना कार्य नहीं कर सक रहा, उसमें बाधायें डाल रहे हैं बच्चे। सो उसे बच्चोंके प्रति कुछ तो विरोध आया कि मुझे कष्ट देनेकी बात कह रहे हैं सो उन्हें टालनेको कहना कि नदीके तीरपर मोदक राशियाँ हैं। भागो ! तो वह भी विसम्वादकी ही चीज है। न पाकर कुछ समय बाद उसे और पीड़ित करेंगे। अथवा कुछ भी हो। जिन वचनोंसे आत्महितका सम्बन्ध नहीं वे सब वचन आगमाभास है मिथ्या भी ये वचन है सो भी आगमाभास है। मोहसे आक्रान्त पुरुषों ने एक यह सिद्धान्त बना लिया कि सब जगह सब चीजें मौजूद हैं, सदाकाल मौजूद हैं। अब इसमें सभीको विसम्वाद है। जो कार्य कारणकी प्रणाली है, उपायसे, प्रयत्नसे कार्यसिद्धि होती है वे सब प्रयत्न अब क्या मूल्य रखेंगे ? विसम्वाद है। सभी को इसमें विवाद है। इसी कारणसे ये सब वचन आगमाभास कहलाते हैं आगमके मुकाबलेमें आगमाभासका वर्णन करके अब संख्याके आकाशको बतानेके लिये सूत्र कहते हैं।

प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणमित्यादि संख्याभासम् ॥ ६–५५ ॥

संख्याभासका वर्णन—प्रत्यक्ष ही प्रमाण है, इसमें प्रमाणकी जो एक संख्या उत्पन्न की वह संख्याभास है। अथवा कोई अन्य ऐसे प्रमाणको ही एकको माने जिस में कि सब गर्भित नहीं हो सकते, संख्याभास है। कोई २–३आदिक भी माने, किन्तु सब प्रमाण गर्भित न हों और किसीकी पुनरावृत्ति भी हो तो ऐसी संख्या बनाना सो भी संख्याभास है। सो ये सब संख्याभास क्यों हैं ? इसके बारेमें कहते हैं।

लौकायतिकस्यप्रत्यक्षतः परलोकादिनिषेधस्य परबुद्धयादेश्चासिद्धेः अतद्विषयत्वात् ६-५६

प्रत्यक्षप्रमाणके विषयमें चारुवाककी उक्ति और उसकी अनर्थकता—एक प्रत्यक्ष ही प्रमाण है, यह इसलिए संख्याभास है कि अन्य अनेक पदार्थ ऐसे हैं जो प्रत्यक्षके विषयभूत नहीं हैं। तो प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण कैसे ठहरा ? एक है नहीं और एककी हठ करे तो वह संख्याभास है। जैसे चारुवाक लोग मानते हैं कि एक प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। जो इन्द्रियसे साक्षात् दीखे, बस वही प्रमाण है। तब भला बतलावो कि कोई मनुष्य यदि परलोककी सिद्धि करता है तो प्रत्यक्ष प्रमाणसे परलोकका निषेध कैसे बन जायगा ? प्रत्यक्षका निषेध उसके बनता है जिसका सद्भाव ज्ञानमें आया हो और फिर किसी जगह सद्भाव न मिले तो प्रत्यक्षसे निषेध किया जाता है कि इस चीजका यहाँ अभाव है। जैसे—चौकी, घड़ी, छड़ी, पुस्तक सबको जब चाहे देखा। अब प्रयोजनवश किसीने खोजवाया कि उस कमरेमेंसे चौकी लावो ! और वहाँ चौकी न मिली, थी नहीं, तो उसका निषेध करता है—वहाँ चौकी नहीं है। अरे, तुमने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अच्छी तरहसे देखा कि नही ? हाँ मैंने खूब देखा । वहाँ चौकी नही है । तो यों तो उसका निषेध किया जा सकता है जिसका कि कहीं सद्भाव हो । और, है, तो सर्वथा निषेध भी नही बनता । तो चारुवाक लोग जो परलोक आदिकका निषेध करते हैं वह निषेध किस प्रमाणसे हुआ ? निषेध करेगा तो अनुमान बनायेगा, व्याप्ति बनायेगा । तर्क बनायेगा और प्रमाण बनायेगा तब उसके द्वारा किथत वह प्रमाण सही उतरे या नहीं, यह तो परीक्षाकी बात है, किन्तु प्रत्यक्ष प्रमाणसे परलोकका निषेध किया जाना सम्भव नही है । और, इसी प्रकार दूसरे आत्माओंमें भी बुद्धि बतायी है तो उस बुद्धि की सिद्धि कैसे करोगे ? दूसरे जीवोंमें जो ज्ञान पाया जाता है, चेतना पायी जाती है, बुद्धि पायी जाती है, समझ तो है ही ना ? तो उसे किस प्रमाणसे जानोगे ? प्रत्यक्ष प्रमाणसे बुद्धि नही जानी जा सकती क्योंकि बुद्धि आदिक अमूर्त पदार्थ प्रत्यक्षके विषय-भूत हैं ही नही, तो परलोक आदिकका निषेध और परबुद्धि आदिकका ग्रहण प्रत्यक्ष प्रमाणसे नही बन सकता है, इस कारण एक प्रत्यक्ष ही प्रमाण है, ऐसी हठ करना सो सख्याभास है । प्रमाण एक प्रत्यक्ष ही नही है । परलोक निषेधके प्रसंगमें वह अप्रमाण भी है अन्यथा परलोकका निषेध और परबुद्धिका ग्रहण, यह बात न बन सकेगी । पर-लोक है, और दूसरोमें बुद्धि समझ है इस बातकी सिद्धि पहिले बहुत विस्तारके साथ कर दी गई है । भूत आदिकके कथनसे भी सिद्ध हो ा है । उत्पन्न होते ही जो बालक दुग्धपान करने लगता है उसके संज्ञा संस्कार आदिक भी पूर्वभवको सिद्ध करते हैं । तो जो दूसरे अन्य प्रमाण द्वारा भी सम्मत है ऐसे परलोकका निषेध प्रत्यक्षसे नही बन सकेगा । निषेध ही करना है तो अन्य प्रमाण मानने होगे । यहाँ इस विषयको मुख्य नही कह रहे हैं कि परलोक है अथवा नही है, किन्तु चारुवाक परलोकको नही मानते तो परलोकका निषेध करनेके लिए अन्य प्रमाण मानने ही पड़ेंगे और सब प्रत्यक्ष ही मात्र एक प्रमाण है ऐसी एक संख्या न ठिक सकेगी । फिर भी एक संख्या मानना प्रमाणकी सो संख्याभास है, अब संख्याभासका ही और समर्थन करते हुए अथवा प्रत्यक्ष एक ही प्रमाण है संख्याभास दृष्टान्तको और समर्थित करनेके लिए अन्य दार्शनिकोंके द्वारा मानी गई संख्याका निराकरण करते हुए सूत्र कहते हैं ।

सौगतसांख्ययौगप्राभाकरजैमिनीयानां प्रत्यक्षानुमानागमोपमानार्थापत्यभावैः एकैकाधिकै व्याप्तिवत् ॥ ६–५७ ॥

संख्याभासोंका विशेष वर्णन व संख्याभासरूपसे समर्थन – सौगत, सांख्य, यौग, प्राभाकर, जैमिनीय इनके सिद्धान्तमें जैसा कि एक–एक अधिक–अधिक संख्यामें प्रमाण माना है और उन्होंने उनकी संख्या इस तरहसे व्यवस्थित की है कि सौगत सिद्धान्तमें दो प्रमाण है प्रत्यक्ष और अनुमान । सांख्यसिद्धान्तमें तीन प्रमाण है प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम । यौग और प्राभाकरके सिद्धान्तमें चार प्रमाण है–– प्रत्यक्ष अनुमान, आगम, अनुमान । प्राभाकर सिद्धान्तमें ५ प्रमाण हैं प्रत्यक्ष,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति। और मीमांसकोंके सिद्धान्तमें ६ प्रमाण हैं— प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति और अभाव। तो जैसे ये सब संख्याभास हैं क्योंकि इसमें व्याप्ति आदिक विषयभूत नही हुए। जैसे कि सौगत सिद्धान्तमें दो प्रमाण माने गए हैं, प्रत्यक्ष और अनुमान। बतलावो व्याप्तिको विषय करने वाला कौनसा ज्ञान रहा ? इन पाँचों प्रकारके संख्याभासोंमें किसीमें भी प्रमाणका विषय व्याप्ति नहीं बनता और पूर्वकथित चारुवाकके एक संख्याभासमें भी जैसे परलोकका निषेध और परबुद्धिका ग्रहण नही बनता इसी प्रकार व्याप्ति न तो प्रत्यक्ष ज्ञानका विषय है न अनुमानका न उपमानका, न अर्थापत्तिका, और, अभाव प्रमाण तो व्याप्ति का विषय ही क्या कर सकेगा ? तो यह इस प्रकार १, २, ३, ४, ५, ६ आदिक प्रमाणकी संख्या मानना सब संख्याभास है। तो जैसे इन २, ३ आदिक प्रमाणाभासोंमें व्याप्तिकी सिद्धि नही होती। क्योंकि वह इन प्रमाणोंका विषयभूत है ही नहीं, इसी प्रकार प्रत्यक्ष प्रमाणसे भी परलोक निषेध व परबुद्धि ग्रहणकी सिद्धि नहीं होती। यह प्रयोग है कि जो जिसका अविषय है उससे उसकी सिद्धि नहीं होती। जैसे प्रत्यक्ष अनुमान आदिकका विषय नहीं है व्याप्तिकी सिद्धि प्रत्यक्ष अनुमान आदिक प्रमाणोंसे न हो सकेगी। तो इसी प्रकार परलोक निषेध, पर बुद्धि ग्रहण भी प्रत्यक्ष का विषय नहीं है। तो प्रत्यक्षसे परलोक निषेध, परबुद्धि ग्रहण न हो सकेगा और तब जैसे कि १ २, ३, ४, ५, ६ आदिक प्रमाणोंकी संख्या संख्याभास हैं इसी प्रकार प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है इस प्रकारकी एक संख्या भी संख्याभास है। यहां एक जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि परलोकका निषेध यदि प्रत्यक्षका विषयभूत नहीं है तो उसका विषय करने वाला अनुमान आदिक प्रमाण तो हो जायगा। इसके समाधानमें कहते हैं—

अनुमानादेस्तद्विषयत्वे प्रमाणान्तरत्वम् ॥६-५८॥

अनुमानादिसे परलोक निषेध व परबुद्धिग्रहण माननेपर प्रमाणान्तरताका प्रसंग एवं कल्पित संख्याविघात—परलोकका निषेध और परबुद्धिका ग्रहण यदि अनुमान आदिक प्रमाणोंसे मानते हो तो बात तो सही है, अनुमानसे परलोकका निषेध हो जायगा, वह सिद्ध हो सके अथवा नही, यह तो आगेकी बात है. लेकिन अनुमानसे बन तो जायगा रूप परलोक निषेध करनेका और परबुद्धिके ग्रहण करनेका भी अनुमान बन जायगा, लेकिन उन दार्शनिकोंके लिए तो अनिष्ट है, क्योंकि अनुमान आदिक नामके अन्य प्रमाण बन जायेंगे। जो लोग प्रत्यक्षको ही एक प्रमाण मानते हैं उनको तो अनुमानसे परलोक निषेध और परबुद्धि ग्रहण सिद्ध करना अनिष्ट है, फिर तो प्रत्यक्ष नामका एक प्रमाण न रहा। सो यह बात इष्ट है कि परलोक निषेध अनुमान प्रमाणसे बन जायगा। लेकिन जिनको संख्याभास बता रहे हैं उन दार्शनिकों को इष्ट नही है, क्योंकि ऐसा माननेपर नये-नये प्रमाण और बन जायेंगे। जिस तरह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चारुवाकके प्रति यह दोष आता है कि अनुमान प्रमाण बननेसे उनके लिए दो प्रमाण मानने पड़ेंगे। तो इसी तरह सौगत आदिक दार्शनिकोंके प्रति भी तर्क आदि प्रमाणान्तर माननेका प्रसंग आता है।

तर्कस्येव व्याप्तिगोचरत्वे प्रमाणान्तरत्वम् अप्रमाणस्य अव्यवस्थापकत्वात् ॥ ६–५६ ॥

परलोकनिषेधक अनुमान व व्याप्तिगोचर तर्क माननेपर प्रमाणान्तरत्वकी सिद्धि—यह सूत्र चारुवाकके तथा सौगतादि अन्य दार्शनिकोंके अनिष्ट प्रसंगके उदाहरणरूपमें कहा गया है। सो यह सूत्र उदाहरणस्वरूप भी है और अनेक संख्याभासोंके प्रति दूषणस्वरूप भी है। व्याप्ति ज्ञानका विषय करने वाला सौगत आदिकके कोई प्रमाण नही हैं। व्याप्तिको प्रत्यक्षसे नही जाना जाता, अनुमानसे नही जाना जाता, आगम अनुमान अर्थापत्ति, अभाव आदिक किन्ही भी प्रमाणोंका विषयभूत व्याप्ति नही है। व्याप्तिका परिज्ञान तर्क ज्ञानसे ही होता है। तो जैसे तर्क ज्ञान व्याप्तिका विषय करने वाला है, ऐसा माननेपर प्रमाणान्तरपना मानना पड़ता है इसी प्रकार से परलोक आदिकका निषेध अनुमानका विषय बनता है ऐसा माननेपर तो अनुमान भी एक नया प्रमाण मानना पड़ेगा, अथवा यह सूत्र सबके लिए कहा गया है। सौगत, सांख्य, योग प्राभाकर आदिक जिनमें २, ३, ४, ५, ६, प्रमाण माने हैं, फिर भी व्याप्तिका ग्रहण किसी प्रमाणसे नही हो सका है। उसका साधनके होनेपर साध्यका होना बताना, साध्यके न होनेपर साधनका न होना बताना, जैसे उदाहरणमें जहाँ जहाँ धुवाँ है वहाँ वहाँ आग है ऐसा व्याप्ति बताना। जहाँ आग नही है वहाँ धुवाँ भी नही है, ऐसी व्याप्ति बताना, इसका परिज्ञान केवल तर्क प्रमाणसे ही होता है, और, तर्क प्रमाणको किसीने भी नहा माना है, सो यह अनिष्ट प्रसंग सभी दार्शनिकोंके आता है। जो संख्या मानते हैं प्रमाणोंकी उन अनेक दार्शनिकोंका उनकी वह संख्या संख्याभास रूप है। व्याप्तिको कोई भी प्रमाण उनका माना हुआ ज्ञान विषय नही करता, और जब व्याप्तिके ग्रहण करने वाले उनके कोई प्रमाण नही हैं तो व्याप्तिके विषयमें तो वे सब ज्ञान अप्रमाण हैं और जो स्वयं अप्रमाण हैं वे व्यवस्था नही कर सकते हैं। जैसे कि चारुवाकके लिए अनुमान अप्रमाण है। वे केवल प्रत्यक्षको ही प्रमाण मानते हैं। अब परलोकनिषेधके लिए अनुमान प्रयोग वे बनायें तो उनके सिद्धान्तसे सिद्ध नही हो सकता। कारण यह है कि चारुवाककी दृष्टिमें अनुमान अप्रमाण है और जो अप्रमाण ज्ञान है वह कभी व्यवस्था नही बना सकता। यदि अप्रमाण ज्ञान भी व्यवस्था बनाने लगे तो संशय विपर्यय आदिक ज्ञान भी व्यवस्थापक बन जायें। इसी तरह सौगत सिद्धान्तमें प्रत्यक्ष और अनुमान इनके अलावा और कुछ प्रमाण नही माना गया है तो व्याप्तिका ग्रहण वे कैसे करें और व्याप्तिके ज्ञान बिना अनुमान ज्ञान बन नही सकता, अनुमान प्रमाण तभी बनता है जब उसकी व्याप्ति पहिले सिद्ध हो। तो व्याप्तिके ज्ञान के बिना अनुमान भी नही बन सकता और वह कहे कि व्याप्तिका ज्ञान तर्क विचारसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हो जायगा तो तर्क विचार ही तो प्रमाण हैं, उन्हें तो सौगत सिद्धान्तमें प्रमाण नही माना है। क्षणिकवादकी दृष्टिमें तो तर्क ज्ञान अप्रमाण है। तो अप्रमाणसे व्याप्तिकी व्यवस्था नही बन सकती। इसी प्रकार सांख्य आदिक सभी सिद्धान्तोंमें व्याप्तिकी व्यवस्था न बन सकेगी, कारण कि उन सबकी दृष्टिमें तर्क अप्रमाण है। अप्रमाण ज्ञानसे किसी भी विषयकी व्यवस्था नही बनाई जा सकती। इस कारणसे उन दार्शनिकोंने जो अपनी कल्पनासे प्रमाणकी संख्या मानते हैं ये सब संख्यायें नही, किन्तु संख्याभास हैं। उनकी कल्पित संख्यामें सभी प्रमाणोंका अन्तर्भाव नही आ पाया। जो प्रमाण छूट गये हैं उनके विषयको इन दार्शनिकोंके कहे हुए प्रमाणोंमेंसे कोई भी प्रमाण विषय नहीं करता और फिर इन दार्शनिकोंके कहे हुए प्रमाणोंसे अतिरिक्त भी प्रमाण है, इसका कारण है कि –

प्रतिभासादिभेदस्य च भेदकत्वादिति ॥ ६–६० ॥

असंगत प्रमाणसंख्यावादियोंके प्रमाणान्तरत्वरत्व सिद्धिका कारण— जितने भी प्रतिभास भेद हैं एक प्रमाणसे दूसरे प्रमाणकी पद्धतिमें विषयमें अन्तर नजर आता है उतने ही प्रमाण मानें जाने चाहिएँ क्योंकि प्रतिभास आदिकका भेद-प्रमाणोंके भेदकी सिद्धि करता है। कोई यह चाहे कि कुछ अनुमान प्रमाण मान लें, लेकिन उसका प्रत्यक्षमें अन्तर्भाव करले अथवा कोई दार्शनिक मानने कि हम तर्कज्ञान मान तो लेते हैं क्योंकि उसके विना व्याप्तिका ग्रहण नही हो सकता, लेकिन तर्कका हम अनुमानमें ही अन्तर्भाव करलें। इसी प्रकार और–और दार्शनिक भी जो प्रमाण छूट गए हैं उनका अन्तर्भाव अपने अभिमत किसी प्रमाणमें करना चाहें तो यह बात उनकी असंगत है, इसका कारण यह है कि जब प्रतिभास भेद है तो प्रमाणोंमें भी भेद है। प्रत्यक्षका प्रतिभास यह है कि इन्द्रियके द्वारा स्पष्ट सीधा जान ले। स्मृतिका विषय यह है कि पहिले जानी हुई चीजका ख्याल करले। प्रत्यभिज्ञानका विषय यह है कि पहिले जानी हुई चीजका स्मरण हो और सामने आने वाली चीजका प्रत्यक्ष हो, फिर उन दोनोंका जोड़रूप करके एकत्वको जानें, सादृश्यको जानें, वैसादृश्यको जानें, किसी भी प्रकारकी प्रतियोगिता जानें तो वह प्रत्यभिज्ञान है। यों समस्त ज्ञानोंका स्वरूप निराला है, उनके प्रतिभासमें भेद स्पष्ट समझमें आता है। तो जब प्रतिभास आदिक का भेद समझमें आ रहा तो वे प्रमाणके भेदक ही हैं। इन सब ज्ञानोंका, प्रमाणोंका स्वरूप निराला है। इसमें प्रतिभासभेद है। जानन पद्यतिका भेद है, यह बात पहिले परिच्छेदमें भली प्रकारसे कह दी गई है, परोक्षके प्रमाणके प्रकरणमें दूसरे परिच्छेदमें भली प्रकार कह दिया है कि इन सब प्रमाणोंमें अपनी–अपनी जुदी–जुदी विशेषता है इस कारण ये सभी ज्ञान प्रमाणभूत हैं। तो ६ भी प्रमाण जिन्होंने माना है उनके सिद्धान्तमें भी व्याप्तिका, स्मरणका, प्रत्यभिज्ञानका कहीं भी अन्तर्भाव नहीं हो सक रहा है। और, फिर जो ६ से कम संख्या मानने वाले दार्शनिक हैं उनके तो अनुमान,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आगम, उपमान, अर्थापत्ति, इनका ही अन्तर्भाव नहीं हो पाता, उनसे लिए ये सब प्रमाण प्रमाणान्तर मानने पड़ेंगे, तो यों जब प्रतिभासभेद हो रहा है तो वे सब प्रमाण जुदे-जुदे हैं और उन्हें मानना चाहिए।

प्रमाणसंख्याकी समीचीन पद्धति —उक्त प्रकार संख्याभासके प्रकरणमें जो वर्णन किया गया है उससे यह स्पष्ट होता है कि प्रमाणोंकी इस प्रकारकी संख्या मानना युक्त नहीं है, तब समीचीन पद्धति क्या है जिससे प्रमाणोंकी संख्या विदित हो, सुनिये ! मूलमें प्रमाणके दो भेद हैं प्रत्यक्ष और परोक्ष. ऐसा कहनेपर कोई भी प्रमाण इनमें छूटता नहीं है। किसीका प्रत्यक्षमें अन्तर्भाव है और किसीका परोक्षमें अन्तर्भाव है। ज्ञानकी दो पद्धतियाँ हैं स्पष्ट जानना या अस्पष्ट जानना। तो इन दो पद्धतियोंसे अतिरिक्त और कुछ पद्धति ही नहीं है। तब कोई भी ज्ञान, कोई भी प्रमाण इन दोसे बाहर नहीं रह जाता। अब प्रत्यक्ष और परोक्षके विस्तारमें जब चलते हैं तब प्रत्यक्ष के दो भेद हैं सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और पारमार्थिक प्रत्यक्ष। जो इन्द्रियजन्य ज्ञान है और व्यवहाररूपमें स्पष्ट ज्ञान है वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष ज्ञान है। जैसे इन इन्द्रियों के द्वारा जो कुछ जाना वह एकदम स्पष्ट है। कानोंसे जो शब्द सुना उसमें कोई शंका नहीं करता। स्पष्ट ज्ञान हुआ। आँखोंसे जो कुछ देखा उसमें भी कोई सन्देह नहीं करता। जो कुछ देखा वह स्पष्ट ज्ञान है। यों सभी इन्द्रियोंके द्वारा जो कुछ उनका विषय है वह सबको जान जाता है, रसना इन्द्रियसे पदार्थका रस जान लिया जाता। स्पर्शन इन्द्रियसे ठंढा गर्म आदिक स्पष्ट जान लिया जाता। घ्राण इन्द्रियसे गंध भी स्पष्ट हो जाती है। तो जो स्पष्ट एकदेश विशद हो उसे कहते हैं सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष। इसका नाम सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष यों पड़ा कि वस्तुतः यह ज्ञान परोक्ष है क्योंकि जो इन्द्रिय और मनकी सहायतासे उत्पन्न हो उसे परोक्ष कहते हैं। इस व्याख्याके अनुसार मेलरूपसे जो इन्द्रियजन्य ज्ञान हैं वे परोक्षज्ञान ही कहलाते हैं। लेकिन इन ज्ञानोंमें पारमार्थिक प्रत्यक्ष ज्ञानकी तरह कुछ न कुछ ढंगमें किसी न किसी रूपमें थोड़ा एक देशमें स्पष्टता आती है इस कारण इसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं। पारमार्थिक प्रत्यक्षका अर्थ है जो परमार्थतः वास्तविक रूपसे प्रत्यक्ष है, इन्द्रियकी सहायता न लेकर केवल आत्मशक्तिसे जो स्पष्ट ज्ञान होता है उसे पारमार्थिक प्रत्यक्ष कहते हैं। और पारमार्थिक प्रत्यक्षके दो भेद हैं—विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष और सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष। अवधि ज्ञान और मनः पर्ययज्ञान तो विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष हैं, केवल ज्ञान सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष है। यों प्रत्यक्षकी संख्या निश्चय करने के बाद अब परोक्षज्ञानकी संख्या निरखिये स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम ये सब परोक्षज्ञान कहलाते हैं, क्योंकि इनमें जो कुछ ज्ञान हुआ है वह ज्ञान अविशद है और इन्द्रियमनकी सहायता लेकर हुआ है।

करणानुयोग और दर्शनशास्त्रकी पद्धतियोंके प्रमाणभेदोंकी अवि-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रुद्धता—प्रमाणके भेदमें प्रयोजनवश और प्रकारसे भी भेद किया जाता है। लेकिन गर्भित सब हो जाते हैं। जैसे करणानुयोगके सिद्धान्तमें परोक्षके दो भेद किये गए हैं—मतिज्ञान और श्रुतज्ञान और प्रत्यक्षके तीन भेद किए गए हैं—अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवल ज्ञान। सो इस भेदोंमें भी ये सभी भेद अन्तर्निहित हो जाते हैं। मतिज्ञानमें तो सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष, स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमान ये प्रमाण गर्भित होते हैं। और श्रुतज्ञानमें परार्थानुमान और आगम अन्तर्निहित हैं। इस प्रकार प्रमाणोंकी विधिपूर्वक संख्या बताना तो वास्तविक है और इसके विरोधमें इसके अन्य कुछ भी नाम लेकर उनकी संख्या निश्चित कर देना, वह सब संख्याभास है। यहां तक संख्याभासके सम्बन्धमें वर्णन किया। अब प्रमाण स्वरूप और संख्याके आभासों के वर्णनके बाद अब विषयाभासका प्ररूपण करनेके लिए सूत्र कहते हैं।

विषयाभासः सामान्यं विशेषोद्वयं वा स्वतन्त्रम् ॥६–६१॥

प्रमाणाभासका वर्णन—विषयाभास केवल सामान्यको कहते हैं अथवा केवल विशेषको कहते हैं, अथवा निरपेक्ष स्वतंत्र हों ऐसे और विशेष दोनोंको कहते हैं। प्रमाणका जो विषय है वह होता है सामान्य विशेषात्मक। लोकमें ऐसा कोई भी सत पदार्थ नहीं है जो एक सामान्यरूप हो अथवा विशेषरूप हो या निरपेक्ष अलग अलग एक एक स्वतंत्ररूपसे हो, किन्तु प्रत्येक पदार्थ सामान्यविशेषात्मक ही होता है, किन्तु ऐसा न मानकर जो दार्शनिक केवल सामान्यरूपसे ही पदार्थको माने तो वह प्रमाण है क्योंकि प्रमाणका विषयभूत केवल सामान्य नहीं होता। यदि कोई पुरुष केवल विशेषणरूप ही पदार्थ माने तो वह भी विषयाभास है। क्योंकि प्रमाणका विषय केवल विशेषरूप नहीं होता। यदि कोई सामान्य विशेष दोनों रूप ही माने स्वतत्र स्वतंत्ररूपसे, तो वह भी विषयाभास है, क्योंकि सामान्य विशेषात्मक पदार्थ होता है और वही एक पदार्थ होता है और वही एक पदार्थ द्रव्यदृष्टिसे विशेषरूप है। उसके विरुद्ध केवल सामान्यरूप केवल विशेषरूप अथवा स्वतंत्र ये दोनों विषयाभास कहलाते हैं। जैसे कि सत्ताद्वैतवादी, ब्रह्माद्वैतवादी, अद्वैती आदिक कुछ लोग केवल सामान्यको ही स्वीकार कर रहे हैं। सब कुछ एक ही है यह बात सामान्यदृष्टिकी मुख्यतासे और मुख्यता ही क्यों, केवल सामान्य दृष्टि ही रह जाती है तब अद्वैत बनता है। सर्वाद्वैत केवल सामान्यरूप ही है। तो है नहीं ऐसा कुछ, केवल सामान्य-हुआ, क्यों नहीं है, उसका कारण अगले सूत्रमें कहेंगे। इसी प्रकार केवल विशेष भी कोई पदार्थ नहीं है। जैसे कि क्षणिकवादी लोग मानते हैं कि एक प्रदेशी एक समय वाला एक भावात्मक पदार्थ हुआ करता है। तो यह विशेष विशेषभास है। क्योंकि प्रमाणका विषय केवल विशेष हो ही नहीं सकता। क्योंकि केवल विशेषात्मक पदार्थ है ही नहीं। अतएव यह भी विषयाभास है। और, जो लोग स्वतंत्ररूपसे दोनों मानते

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं—जैसे यौग सिद्धान्तमें कहा है कि परमाणु नित्य भी है अनित्य भी है लेकिन जो परमाणु नित्य है वह तो नित्य ही हैं। कारण परमाणु नित्य है कार्य परमाणु अनित्य है। तो अब एक पदार्थमें नित्यानित्यात्मकता तो न रही। भिन्न भिन्न दो पदार्थ हैं। कोई नित्य माना गया कोई अनित्य माना गया। तो निरपेक्ष इस प्रकारका सामान्य विशेषपना भी नहीं, नित्य निरखा जाता है सामान्य दृष्टिसे और अनित्य देखा जाता है विशेषदृष्टिसे। सो एक ही पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है, नित्यानित्यात्मक हैं, ऐसा न मानकर कारणपरमाणु नित्य है, कार्यपरमाणु अनित्य है, इस प्रकार दोनों ही मानकर निरपेक्ष माना गया, अतएव यह भी विषयाभास है। ये सब विषयाभास क्यों कहलाते हैं ? इसके उत्तरमें कहते हैं—

तथाऽप्रतिभासनात् कार्याकरणाच्च ॥६–६२॥

विषयाभासोंकी विषयाभासताका कारण—कहीं केवल सामान्य ही हो अथवा किसीका मात्र सामान्यरूपसे ही प्रतिभास होता हो अथवा कोई पदार्थ केवल विशेषरूप हो अथवा केवल विशेषरूपसे ही पदार्थका प्रतिभास होता हो, अथवा कोई स्वतंत्र–स्वतंत्ररूपसे सामान्य और विशेष हो ऐसा जगतमें कुछ भी नही है, इस कारण सामान्य, विशेष और निरपेक्ष दोनों विषयाभास कहलाते हैं। साथ ही यह भी बात है कि केवल सामान्य कुछ भी कार्य नही करता, अथवा केवल विशेष भी कोई कार्य नही कर सकता। निरपेक्ष दोनों भी कोई कार्य नही कर सकते। जिस पदार्थमें अर्थ क्रिया नही होती है उस पदार्थका अस्तित्व ही सम्भव नही है। जो भी पदार्थ होगा उसमें अर्थक्रिया अवश्य होगी। जिस अर्थक्रियाको कुछ दार्शनिक तो व्यक्तरूपसे काम करने वाला, जो लोगोंके कुछ काम आये ऐसा कहते हैं, वह भी बात है लेकिन कुछ पदार्थ चाहे काममें किसीके न आयें अथवा उनका कोई व्यक्त रूप नजर न आये तो भी उनमें जो प्रतिसमय परिणमन होता रहता है वही उनका कार्य कहलाता है। तो वहाँ कार्य भी नही बन सकता है। केवल सामान्य, विशेष अथवा स्वतंत्र दोनोंके माननेमें प्रकट आपत्ति, है लोगोंके काम आये ऐसी अर्थक्रिया भी नही बन सकती है। जैसे कि गौ सामान्य–केवल गोत्व सामान्यसे कोई चाहे कि मुझे दूध मिल जाय तो क्या मिल सकता है ? कहाँसे लायगा ? जो गाय व्यक्त है उससे ही तो दुह करके लायगा। इसी तरह गोत्व सामान्य हो ही नही, किन्तु कोई पिण्ड है मात्र, विशेष मात्र है। अव्वल तो बात ऐसी हो नही सकती कि कोई केवल विशेष हो, पर एक कल्पनामें ऐसा मान लिया जाय कि केवल विशेषमात्र ही है कुछ, तो ऐसे केवल विशेषसे भी दूध न प्राप्त होगा। मतलब किसी भी प्रकारकी अर्थक्रिया केवल सामान्यसे अथवा केवल विशेषसे नही हो सकती है। तो ये तीन विषयाभास सामान्य, विशेष अथवा निरपेक्ष दोनों ये विषयाभास इस कारण कहलाते हैं कि प्रथम तो इस तरहका है नही पदार्थ। इस तरहसे तो प्रतिभास होता नही। दूसरा हेतु यह है कि कोई प्रकारका कार्य नही कर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सकता है। जो केवल सामान्यरूप हो, केवल विशेषरूप हो, वह स्वयं क्या असमर्थ होता हुआ कार्यको कर लेगा ? या समर्थ होता हुआ कार्यको कर लेगा ? इन दो विकल्पोंको उठाकर उनके बारेमें विचार करो। यदि कहा जाय कि केवल सामान्य अथवा केवल विशेष स्वयं असमर्थ होता हुआ कार्यको करले तो यह बात अयुक्त है क्योंकि—

स्वयमसमर्थस्याकारकत्वात् पूर्ववत् ॥ ६–६३ ॥

स्वयं असमर्थ विषयाभासभूतोंकी अकारकता—जो पदार्थ स्वयं असमर्थ है वह कारक नही बन सकता है पूर्वकी तरह। अर्थात् जिस पदार्थसे जो कार्य हुआ माना गया है उस कार्यके होनेसे पहिले जैसे वह पदार्थ असमर्थ था और उस कार्यको नही कर सक रहा था तो जब पदार्थको सदा ही असमर्थ मान लिया गया तो वह तो सदा ही असमर्थ है। तो जैसे बहुत पहिले पदार्थका कार्य न होता था असमर्थ होनेसे, इसी प्रकार अब भी, आगे भी कभी भी कोई भी कार्य न हो सकेगा, क्योंकि उसे तो असमर्थ मान लिया गया है। और, यह बात इसी ग्रन्थमें पहले जहाँ विषयका वर्णन किया गया कि प्रमाणका विषय क्या है ? उस प्रसंगमें विस्तारपूर्वक कह दिया गया है। यहाँ संक्षेपमें यह जानना कि केवल सामान्य अथवा केवल विशेष यदि कार्य करने में असमर्थ है तो वह कभी भी कार्य न कर सकेगा पहिलेकी तरह। और, यदि यह कल्पना की जाय कि केवल सामान्य अथवा केवल विशेष समर्थ होकर करने लगे तो यह द्वितीय पक्ष भी असंगत है क्योंकि—

समर्थस्य करणे सर्वदोत्पत्तिरनपेक्षत्वात् ॥ ६–६४ ॥

स्वयं समर्थ विषयाभासभूतोंसे सर्वदा उत्पत्तिका प्रसंग—केवल सामान्य अथवा केवल विशेष यदि समर्थ है और समर्थ होकर कार्य करनेकी बात मानो जाय तब तो सदा काल ही कार्य उत्पन्न होते रहना चाहिए, क्योंकि अब तो वह समर्थ है। समर्थ कार्य न कर सके, यह कैसे सम्भव है ? जैसे अग्नि दाहमें समर्थ है, गर्मी उत्पन्न करनेमें समर्थ है तो कही भी रखी हो वह अपना स्वभाव न छोड़ेगी। तो यह केवल सामान्य रूप पदार्थ अथवा केवल विशेषरूप पदार्थ यदि कार्य करनेमें समर्थ है तो समर्थ स्वभाव वाला पदार्थ फिर किसी समय कार्य न करे उसका कारण क्या ? क्योंकि जो समर्थ है वह किसीकी अपेक्षा नही रखता। यदि परकी अपेक्षा रखकर कार्य करे कोई तो उसका अर्थ यह निकलेगा कि वह कार्य करनेमें समर्थ नहीं है। समर्थ होता तो किसीकी अपेक्षा न करता। तो इस प्रकारका समर्थ अपना केवल सामान्य अथवा केवल विशेषरूप पदार्थ है तो उससे हमेशा कार्योंकी उत्पत्ति होते रहना चाहिए और जितने भी कार्य उससे सम्भव हैं, हो सकते हैं, भविष्यमें जितने भी परिणमन होंगे, कार्य होंगे वे सारेके सारे एक ही समयमें एक साथ क्यों नही हो जाते ?

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो यह पक्ष भी संगत नही रह सका कि समर्थ होकर केवल सामान्य रूप अथवा केवल विशेष रूप पदार्थ कार्य करता है। यदि कहो कि समर्थ तो है केवल सामान्य रूप पदार्थ अथवा केवल विशेष रूप पदार्थ लेकिन समर्थ होनेपर भी परकी अपेक्षा रखता है। कोई अनुकूल निमित्त मिले तब उससे कार्य बनता है। तो इसके उत्तरमें कहते हैं—

परापेक्षणे परिणामित्वमन्यथा तदभावात् ॥६–६५॥

परापेक्षतासे स्वयं समर्थ विषयाभासभूतोंसे कार्यव्यवस्था माननेपर परिणामित्वकी सिद्धि—वह समर्थ केवल सामान्यरूप पदार्थ अथवा केवल विशेष-रूप पदार्थ यदि परकी अपेक्षा रखकर कार्य करता है तो इसके मायने यह होगा कि वह परिणामी पदार्थ है, क्योंकि उसमें दो स्वभाव आ गए। परका संयोग मिले तो वह कार्य नहीं कर सकता। जिसमें परस्पर विरुद्ध अनेक स्वभाव पाये जायें अथवा कोई कार्य कर सके कोई कार्य न कर सके वह तो परिणामी होगा क्योंकि अनपेक्षा-कारका परित्याग किया और अपेक्षकारका ग्रहण किया तभी न कार्य बना ? तो पूर्व आकारको छोड़ना और नवीन आकारका ग्रहण करना, इसीके मायने है परिण-मन। यदि ऐसा न हो तो परापेक्षता ही नहीं बन सकती। तो समर्थ होकर भी यह विषयाभास कार्य न कर सका। असमर्थ होकर भी यह कार्य न कर सका, इससे सिद्ध है कि जब इसमें अर्थ क्रिया नहीं हो सकती तो यह कोई पदार्थ नही है, यह पदार्थके विषयभूत नहीं। किन्तु विषयाभास है। अब इस समय फलाभासका प्ररूपण करते हुए कहते हैं—

फलाभासं प्रमाणादभिन्नं भिन्नमेव वा ॥६–६६॥

प्रमाणफलाभासोंका वर्णन—प्रमाणका स्वरूप, प्रमाणके भेद, प्रमाणके विषयका वर्णन होनेके बाद फलकी जिज्ञासा होती ही है। क्योंकि कोई भी पुरुष बिना फलके, बिना प्रयोजनके कुछ भी प्रवृत्ति नहीं किया करता है। तो उस प्रमाण का फल क्या है, उससे किस प्रयोजनकी सिद्धि होती है ? उसका वर्णन किया जाना आवश्यक है। सो फलका वर्णन किया गया था। अब आभासके इन प्रसंगोंमें प्रमा-णाभास और प्रमाणाभासके अनेक भेदोंका और उनके विषयाभासका वर्णन करके अब फलाभासका वर्णन किया जा रहा है। प्रमाणका फलाभास क्या है ? फल बताया गया था अज्ञाननिवृत्ति हानि, उपादान, और उपेक्षा, सो फल तो वह है लेकिन उन फलोंको प्रमाणसे सर्वथा अभिन्न मान लिया जाय अथवा भिन्न मान लिया जाय तो वह प्रमाणाभास हो जाता है। प्रमाणसे फलोंको सर्वथा अभिन्न माननेपर सर्वथा भिन्न माननेपर फलाभास किस कारणसे हो जाता है। ऐसी जिज्ञासा हो जानेपर सूत्र कहते हैं—

अभेदे तद्व्यवहारानुपपत्तेः ॥ ६–६७ ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रमाणाभेद फलाभासकी फलाभासताका कारण—प्रमाणका फल अज्ञान निवृत्ति है। यह प्रमाणका अन्तरङ्ग फल है और इस फलकी प्रमुखता अभेदमें अधिक है। लेकिन सर्वथा अभेद मान लिया जाय इस अज्ञान निवृत्तिको तब तो उसका अर्थ यह होगा कि चाहे प्रमाण कहो अथवा अज्ञाननिवृत्ति कहो, एक ही बात है। यह अज्ञान निवृत्ति उस प्रमाणका फल है इस प्रकारका व्यवहार ही नहीं बन सकता। व्यावहारिक फल बताये गये हैं—हान, उपादान और उपेक्षा। ये भी सही फल। जिस वस्तुमें अहित है उसका त्याग कर देना यह प्रमाणका फल है। जब सच्चाज्ञान प्रकट होता है तो जो बातें अहितकी हैं, जीवकी बरबादीके हेतुभूत हैं, उनका परित्याग करता ही है यह ज्ञानी संत। तो वह जो अहितका परिहाररूप फल है वह फल यदि प्रमाणसे सर्वथा अभिन्न मान लिया जाय तो यह फल है, यह प्रमाण है, इतना भी व्यवहार न बन सकेगा। इसी प्रकार प्रमाणका फल है हितकी प्राप्ति, हित कार्यमें लगना। सो यह फल भी यदि प्रमाणसे अभिन्न है तो भी यह प्रमाण है, यह फल है, यह व्यवहार नहीं बन सकता। इसी प्रकार उपेक्षाकी भी बात है। तो प्रमाण इन फलोंको सर्वथा अभेद मान लेने पर यह प्रमाण है, यह फल है, इस प्रकारका व्यवहार ही नहीं बन सकता है। यहाँ कोई शंका करे कि व्यावृत्तिके द्वारा तो प्रमाण और फल की व्यवस्था बन जायगी अर्थात् जो अप्रमाण व्यावृत्तिसे युक्त है वह तो कहलाता है प्रमाण और जो अफल व्यावृत्तिसे युक्त है वह कहलायेगा फल। जैसे कि घट नाम किसका ? अघट व्यावृत्तिका नाम घट है। याने जो जो घट नहीं है, घटसे अन्य है वह नहीं है इसीका अर्थ है घट है, तो व्यावृत्तिसे वस्तुका सद्भाव जाना जाता है तो प्रमाण और फलका सद्भाव उनके विरुद्धकी व्यावृत्तिसे जान लिया जायगा। तब प्रमाणसे फलको अभिन्न माननेपर इस उलहनाकी गुंजाइस न रहेगी कि फिर यह प्रमाण है, यह फल है, यह व्यवस्था बनाना अशक्य है यदि फलको प्रमाणसे अभिन्न मान लिया जाय तो ऐसी शंका होनेपर अर्थात् व्यावृत्तिसे प्रमाण और फलकी कल्पना करके अभिन्न फलकी व्यवस्था बतानेपर उत्तररूपमें सूत्र कहते हैं।

व्यावृत्यापि न तत्कल्पना फलान्तराद्व्यावृत्याऽफलत्वप्रसङ्गात् ॥ ६-६८ ॥

व्यावृत्तिसे भी प्रमाण और फलके सम्बन्धकी कल्पनाका अभाव—व्यावृत्तिके द्वारा भी प्रमाणकी कल्पना और फलकी कल्पना नहीं की जा सकती, शंकाकार फल नाम किसका कहता था कि अफल व्यावृत्ति, जो फल नहीं हैं उनकी व्यावृत्ति होना, इसका नाम है फल। जैसे मनुष्य नाम किसका है ? अमनुष्य व्यावृत्ति। जो मनुष्य नहीं हैं उन पदार्थोंका हट जाना इसका नाम है मनुष्य। तो जैसे अमनुष्य व्यावृत्तिसे मनुष्यका सद्भाव बनता है इसी प्रकार अफल व्यावृत्तिसे फलका सद्भाव बनने लगेगा, इस प्रकारकी कल्पना व्यावृत्तिके माध्यमसे नहीं की जा सकती है, क्योंकि यदि व्यावृत्तिसे फल स्वरूपकी कल्पना करली जाय तो जैसे यह कहा जा रहा है कि फलोंसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

व्यावृत्ति होनेका नाम फल है, तो कोई यह भी तो कह सकता है कि फलान्तरसे व्यावृत्ति होनेका नाम अफल है। जैसे व्यावृत्तिवादी कहते हैं कि अगो व्यावृत्तिका नाम गो है। जो जो गायें नही हैं, उन सब पदार्थोंके हट जानेका नाम गो है, तो क्या कोई यह नहीं कह सकता कि गो व्यावृत्तिका नाम अगो है ? जो जो अगो नही है अर्थात् गो है वे सब हट गए तो अगो बन गया ऐसे ही फल हट गया तो अफल बन गया। अफल व्यावृत्तिसे फलका स्वरूप जैसे कहते हैं यों ही फल व्यावृत्तिसे अफलका स्वरूप बन बैठे। तब व्यावृत्ति से भी फलस्वरूपकी कल्पना नही की जा सकती। अथवा व्यावृत्ति भी कोई मानले तो व्यावृत्ति मानकर भी जब तक निर्णय वस्तुका स्वरूप नही माना जाता तो व्यावृत्ति भी तो नही बताई जा सकती, जैसे गो नाम किसका है कि जो गो नही है उनकी व्यावृत्ति होना। तो जब गोका स्वरूप पहले माना हो तब यों निरखा जा सकेगा कि जो गो नही है उनकी व्यावृत्ति होना तो व्यावृतिसे भी प्रमाणके फल की कल्पना नही की जा सकती है। जिस तरह अफल व्यावृत्तिसे फलकी कल्पना नही की जा सकती इसी प्रकार अप्रमाण व्यावृत्तिसे प्रमाणकी भी कल्पना नही की जा सकती।

प्रमाणान्तराद्व्यावृत्तौ वाऽप्रमाणत्वस्येति ॥६–६६॥

व्यावृत्तिसे प्रमाण व फलका स्वरूप माननेपर आपत्ति-- अन्यापोहवादी लोग प्रमाणको अप्रमाण व्यावृत्तिसे समझते हैं। जो जो प्रमाण नहीं हैं उनका हटाव हो गया तो प्रमाण हो गया। तो यों अप्रमाण व्यावृत्तिसे प्रमाणकी कल्पना नही बन सकती। क्योंकि प्रथम बात तो यह है कि जो प्रमाण नही है ऐसा कहते ही प्रमाण पहिले प्रयोगमें आया तो प्रमाणका स्वरूप तो सर्वप्रथम मानना ही पड़ा। फिर एक सिद्धान्तके हठमें आकर आगे बढ़कर यों बोला जायगा कि जो प्रमाण नहीं है ऐसे सबकी व्यावृत्तिका नाम है प्रमाण। और, दूसरा दोष फिर यह आता है कि जिस अप्रमाणकी व्यावृत्तिसे प्रमाणका स्वरूप बनानेकी बात कही जा रही है तो वहां कोई यह भी कह सकेगा कि प्रमाणान्तरसे व्यावृत्तिका नाम अप्रमाण है या प्रमाणव्यावृत्तिका नाम अप्रमाण है ? तब तो न प्रमाणका स्वरूप बना न अप्रमाण का स्वरूप बना। तो व्यावृत्तिसे भी प्रमाणस्वरूपकी कल्पना नहीं की जा सकती है। वस्तु जो जिस प्रकारकी है उसको उसी रूपमें सही रूपमें निरखनेसे ही पदार्थकी सिद्धि बन सकेगी। इसी प्रकार प्रमाणाभासमें जो प्रथम बात कही है कि प्रमाणसे फलको अभिन्न मानना फलाभास है सो यों फलको प्रमाणसे भिन्न माननेपर प्रमाण फलका व्यवहार नही बन सका।

तस्माद्वास्तवो भेदः ॥६–७०॥

प्रमाण और फलमें वास्तविक– जब प्रमाण और फलके अभिन्न मानने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पर कुछ व्यवहार ही न बन सका तो इससे सिद्ध है कि प्रमाणसे फल अभिन्न नही है, किन्तु प्रमाण और फलमें वास्तविक भेद है। यदि प्रमाण और फलमें भेद न होता तो यह फल है, यह प्रमाणका फल है, इस प्रकारका व्यवहार नही बन सकता था। यह बात बुद्धिमानोंको स्वीकार करना ही पड़ेगा। प्रमाणके फल जो चार बताये गए हैं, उनमें अज्ञान निवृत्तिको भी प्रमाणसे सर्वथा अभेद नही माना जा सकता है, वह भी कथंचित् भिन्न है, और हान, उपादान, उपेक्षा ये तो अज्ञान निवृत्तिकी अपेक्षा बहिरङ्ग फल हैं अर्थात् परम्परा फल हैं। साक्षात् फल प्रमाणका अज्ञान निवृत्ति है, और हान, उपादान, उपेक्षा इन फलों तक आनेके लिए बीचमें अज्ञान निवृत्ति पड़ जाती है। अत एव वह परम्परा फल है। तो उनको भी यदि प्रमाणसे सर्वथा अभेद मान लिया जाता है तो हान, उपादान, उपेक्षा सम्बन्धी भी व्यवहार प्रमाणमें सिद्ध न हो सकेंगे। इस कारणसे यह बात स्वीकार करनी ही पड़ेगी कि प्रमाण और फलमें वास्तविक भेद है, अब यहाँ शंकाकार कहता है कि जब सिद्धान्ततः स्वयं ही यह कहा जा रहा है कि प्रमाण और फलमें वास्तविक भेद है तब फिर इनमें सर्वथा भेद ही मान लीजिए। प्रमाणसे फल सर्वथा भिन्न है. ऐसी आशंका होनेपर उस आशंकाके निराकरणके लिए सूत्र कहते हैं।

भेदे त्वात्मान्तरवत्तदनुपपत्तेः ॥ ६-७१ ॥

प्रमाण और फलमें सर्वथा भेद माननेपर आपत्ति– फलको प्रमाणसे सर्वथा भिन्न माननेपर जैसे अन्य आत्माओंकी बातें अन्य आत्माओंको प्राप्त नही होती इसी प्रकार प्रमाणसे फल भी प्राप्त नही हो सकेगा। क्योंकि अब प्रमाण और फल सर्वथा भिन्न हैं। जैसे आत्मा सर्वथा परस्परमें भिन्न हैं। देवदत्त और यज्ञदत्त नामके मानो दो पुरुष हैं तो देवदत्तने जो कुछ अनुभवा, वह यज्ञदत्तका तो कुछ न कहलायेगा क्योंकि वे दोनों आत्मा सर्वथा भिन्न हैं इसी प्रकार प्रमाण और फल ये सर्वथा यदि मान लिया जाता है तब फिर यह फल है, यह प्रमाण है, यह प्रमाणका फल है ऐसा सम्बंध नही बनता। इससे यह मानना ही होगा कि प्रमाण और फलमें कथंचित भेद होनेपर भी सर्वथा अभेद नही है। इसी प्रकार यह शंकाकार कहता है कि प्रमाण और फलमें सर्वथा भेद भी रहा आये और समवाय सम्बंधके मान लेनेसे प्रमाण और फलका सम्बंध बन जायगा। तो उसके उत्तरमें सूत्र कहते हैं—

समवायेऽतिप्रसङ्गः ॥६-७२॥

प्रमाण और फलका समवायसे सम्बन्ध जोड़नेपर आपत्ति ——प्रमाण और फलमें यदि सवाय सम्बन्ध मान लिया जाय और उससे फिर यह फल है यह प्रमाण है, यह प्रमाणका फल है ऐसा स्वीकार कर लिया जाय तो इसमें बहुतसे दोष आते हैं। जैसे कि द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष ये सर्वथा एक दूसरेसे भिन्न हैं और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उनमें फिर समवाय सम्बन्ध किया जाता है तो वहाँ समवायकी सिद्धि नही बन पाती। क्या वजह है कि आत्मामें ज्ञान गुणका ही समवाय हो। ज्ञान गुणका समवाय पृथ्वी, जलमें भी हो बैठे। जब ये परस्पर सर्वथा भिन्न हैं तो समवायको यह गुंजा स कहाँ कि इनका सम्बन्ध इनमें ही हो। इस प्रकार प्रमाण और फल ये परस्पर अत्यन्त भिन्न मान लिए गए हैं तो फलका समवाय प्रमाणमें ही हो, इसकी गुंजाइस अब कहाँ रही है। फलका जिस किसीके भी साथ समवाय हो बैठे तो सर्वथा भेद मान लेनेपर प्रमाण और फलका समवायमें सम्बन्ध करानेकी बात संगत नही बन सकती। और, यदि परस्पर भिन्न पदार्थोंमें भी समवाय सम्बन्धका नियम बना दिया जाय या समवायसे उनका सम्बन्ध मान लिया जायतो जिस चाहे पदार्थका जिस चाहेके साथ समवाय हो बैठे और फिर वह उसका कुछ बन जाय, घटका पट स्वामी बन जाय। कह दिया जायगा कि घटमें पटका समवाय हो जाता है, द्रव्य द्रव्यका समवाय हो जाता है, जिस चाहे गुणका, जिस चाहे द्रव्यके साथ समवाय हो जाय। जब सर्वथा ही भिन्न है वहाँ अभेद समझनेकी कोई गुंजाइस ही नही है तो न यह नियम बन सकेगा कि यह इस द्रव्यका कुछ है, यह इस द्रव्यका गुण है, यह इस द्रव्यकी क्रिया है, या इन पदार्थोंका यह सामान्य स्वरूप है या पदार्थकी यह विशेषता है, यह सब कुछ भी तो न कहा जा सकेगा। सर्वथा भिन्नमें तो ऐसी ही व्यवस्था हुआ करती है, तो प्रमाण और फलको सर्वथा भिन्न माननेपर भी व्यवस्था न बन सकेगी इस कारण सर्वथा भेद मानना फलाभास है। वह प्रमाणका फल नही है। यहाँ तक इस ग्रन्थमें प्रमाण और प्रमाणाभास दोनोंके स्वरूपका वर्णन किया जा चुका है, जिसका कि प्रथम मंगलाचरणमें प्रतिज्ञा की गई थी कि प्रमाणसे अनर्थकी सिद्धि होती है इस कारण प्रमाण और प्रमाणाभासका संक्षेपमें लक्षण कहा जायगा सो दोनोंका यहाँ तक सब वर्णन हो चुका। अब इस वर्णनसे, इसके परिज्ञानसे मुख्य और साक्षात् क्या लाभ मिला इस बारेमें सिद्धान्तकी पुष्टि और अप सिद्धान्तका परिहार किया जायगा अथवा कहो जय और पराजयकी व्यवस्थाके रूपमें वर्णन आगेके सूत्रमें किया जायगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com